केन

"तुम्हीं मुझसे पूछकर क्या करोगे ?" सैनिक ने उत्तर दिया।

"वह हस्तिशुंड में नाहर का आखेट करने गया है।" फिर उसने व्यंग्य-मिश्रित स्वर में कहा—"क्या आप वहीं जाइएगा !"

"हस्तिशुंड कहाँ है ?" सैनिक ने हरिदास के व्यंग्य की उपेक्षा करके पूछा।

"आप कैसे सैनिक हैं, जो हस्तिशुंड से परिचित नहीं। उसकी पहाड़ी तो दूर-दूर तक प्रसिद्ध है। वहाँ के गहन वन में महाराज कुमार तक सिंह और चीतल का आखेट करने आते हैं।"

"आते होंगे। वह किस ओर है ?"

"आइए, मैं बता दूँ।" हरिदास ने मन-ही-मन हँसकर कहा।

सैनिक उसके पीछे हो लिया। हरिदास ने गाँव से बाहर निकलकर दक्षिण की ओर कर्णवती के बाएँ तट पर सघन वन से ढकी हुई एक शुंडाकार पहाड़ी की ओर संकेत किया और कहा—"देखिए,

कुंजन के यहाँ जाकर उसी रात कालिंजर जाने के विचार में था। परंतु धीरज की मा को मृत्यु-शय्या पर पड़ा देखकर वह जाने की बात नहीं सोच सका। इसके अतिरिक्त जिस बालिका को वह प्यार करता था और जिसके साथ उसका संबंध होनेवाला था उसके साथ दो-एक बातें भी करनी थीं। पहले तो उसे संदेह हुआ। उसे मालवा में कई महीने लग गए थे। उसने समझा, शायद इस बीच में परि-स्थिति बदल गई हो, अर्थात् संभव है, दो-चार महीने तक प्रतीक्षा कर चुकने के उपरांत कुंजन ने अपनी बहन का विवाह इस धीरज के साथ कर दिया हो। उसका वह संदेह जमुना ने ही दूर कर दिया। उसे बड़ा सुख मिला। परंतु उसके बाद हवा के एक ही झोंके में उसका सारा सुख-स्वप्न ताश के पत्तों के महल की भाँति एक ही बार भूमिसात् हो गया। उसने और भी देखा, धीरज के आने पर जमुना ने कितना दुःख, कितनी कातरता और कितना संकोच प्रकट किया। इस

और पर्वतों को भेदती हुई कभी-कभी अपने तट के किसी-किसी ग्राम के निवासी के द्वारा अपने नाम-करण की इस करुण-कथा की पुनरावृत्ति करा देती है।

प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

मुद्रक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

टिप्पणी नं० १

केन नदी का प्राचीन नाम कर्णवती है, तीन वर्ष से अधिक हुए, मैंने बाँदा-डिस्ट्रिक्ट-गजेटियर में इसके वर्तमान नाम की उत्पत्ति के संबंध में निम्न-लिखित किंवदंती पढ़ी थी—

"एक अहीर की कन्या का एक कुरमी के लड़के से प्रेम हो गया, कन्या के पिता ने उन दोनो पर अनुचित संदेह करके कुरमी के लड़के का वध कर

बंधु सुधींद्र वर्मा

को

धन्यवाद

मेरे कुछ श्रद्धेय और कृपालु मित्रों ने मेरी इस कृति को प्रेस में जाने के पूर्व पढ़ने का कष्ट उठाया है तथा यत्र-तत्र अनेक उपयोगी परामर्श देने की कृपा की है, एतदर्थ लेखक उनके निकट ऋणी है।

दीपमालिका, १९८६
चिरगाँव, झाँसी

कृष्णानंद गुप्त

फैन

१
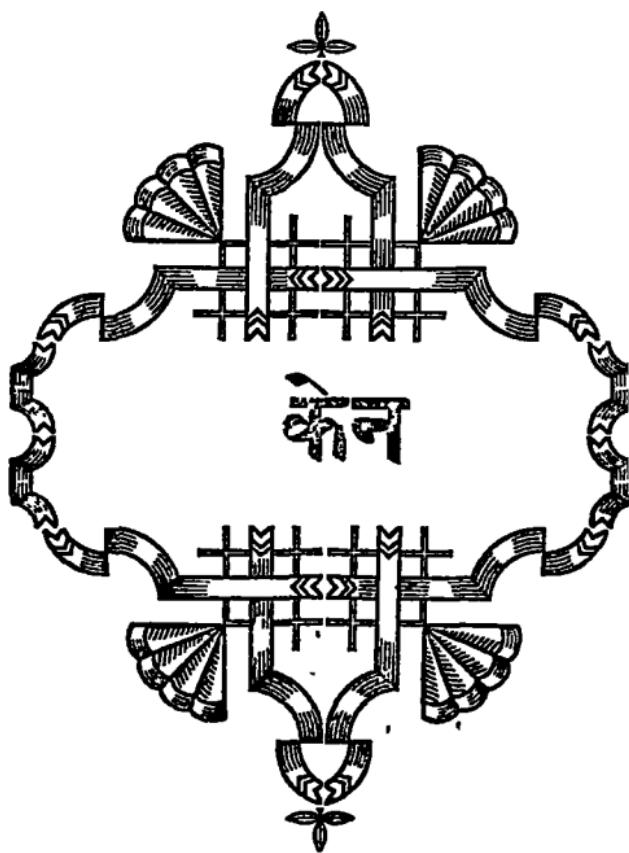
आज से आठ सौ वर्ष पहले की बात है। कर्णा-वती* के दाहने तट पर देवलपुर-नामक एक गाँव बसा हुआ था। यह गाँव कालिंजर से सोलह मील दूर पश्चिम की ओर था। गाँव के निकट से महोवे के लिये राजपथ जाता था। कालिंजराधिपति महा-राज गंड जब कभी विदेश-यात्रा, तीर्थ-यात्रा अथव

* वर्तमान केन

युद्ध-यात्रा के लिये बाहर निकलते, तबकर्ण-बहुधा-वती के उस पार मैदान में डेरा डालते थे। स्वर्गीय महाराज धंग ने यहाँ कर्णवती पर एक विशाल बाँध बनवाया था, साथ ही नदी के उस पार एक शिवालय और धर्मशाला भी। तब से देवलपुर कालिंजर-राज्य का एक-मुख्य जनपद हो गया था।

एक दिन इस गाँव के दो युवक प्रातःकाल कर्णवती में स्नान कर रहे थे। एक किनारे पर बैठा हुआ अपना उत्तरीय धो रहा था और दूसरा कमर तक जल में खड़ा हुआ अपने साथी से बातें कर रहा था। यह कह रहा था—"यह तो मा का अन्याय है। मैं उनसे कह चुका हूँ कि अभी विवाह नहीं करूँगा। फिर वह व्यर्थ में दुःखी होती हैं।"

घाट पर बैठा हुआ युवक बोला—"विवाह क्यों नहीं करोगे? उन्होंने जो लड़की ढूँढी है, क्या वह तुम्हें पसंद नहीं आई?"

"यही समझ लो।"

युवक ने मुसकिराकर कहा—"तुम चित्रकूट गए थे?'

"हाँ।"

"वह लड़की भी अच्छी नहीं है ?"

"अच्छी नहीं, तो क्या यह मेरा दोष है ?"

"फिर स्वयं क्यों नहीं खोज लेते ?"

"आवश्यकता होगी, तो ढूँढ ही लूँगा।"

युवक ने दाहिनी ओर गर्दन मोड़कर तट पर दृक्-पात किया। वहाँ अभी-अभी एक बालिका घाट से नीचे उतरकर नदी की सैकत भूमि पार कर रही थी। कदाचित् युवक का ध्यान उसी ओर आकृष्ट हुआ था। किनारे पर बैठे हुए युवक ने पूछा—

"क्या है धीरज ?"

उसका नाम धीरज था। उसने जल्दी से मुँह फेरकर कहा—"कुछ नहीं।"

परंतु दूसरे युवक को इससे संतोष नहीं हुआ। उसने दृष्टि फेरकर बालिका को देखा। यह उन दोनों से अधिक दूर नहीं थी। युवक ने अपने होठों की मुसकिराहट छिपाकर कहा—

"तुमने सुना है, धीरज ?"

"क्या ?"

"जमुना का जिस क्षत्रिय युवक से संबंध होनेवाला था, उसकी मृत्यु हो गई है।"

"अच्छा ! कब हो गई ?"

"पाँच-छः दिन हुए।"

"फिर ?"

"कुछ नहीं। लखनजू अब किसी दूसरे क्षत्रिय-पात्र को ढूँढेगा।"—वह खिल-खिलाकर हँस पड़ा।

धीरज उसकी हँसी का आशय समझ गया। उसने कहा—"तुम बड़े दुष्ट हो हरिदास ! यदि कोई व्यक्ति अपनी कन्या को अपने से ऊँचे कुल में देना चाहता है, तो इसमें हँसने की कौन-सी बात है।"

"है क्यों नहीं। अहीरों और कुर्मियों में क्या लड़कों की कमी है !"

"यह तो उसकी इच्छा है। पिता शक्ति-भर अपनी कन्या को उच्च कुल में ही देता है।"

"अच्छी इच्छा है। जमुना क्या छोटी है। चौदह वर्ष की हो गई है। यदि लखनजू मुझसे पूछे, तो मैं

उसे यही उपदेश दूँगा कि वह आज ही जमुना को किसी कुर्मी-कुल-भूषण के हाथ में सौंपकर काशी-वास करने चला जाय।"

"तनिक उस कुर्मी-कुल-भूषण का नाम सुनूँ।"

"धीरजसिंह, है न ठीक।"—कहकर वह खूब हँसा।

"वाह! वह बूढ़ा सौ जन्म में भी ऐसा करेगा।"

इस पर दोनो ही खिल-खिलाकर हँस पड़े। पर धीरज तुरंत यह अनुभव करके कि उसने अपने मित्र हरिदास से ऐसी बात कह दी है, जो उसे कहनी न चाहिए थी, मन-ही-मन लज्जित होकर चुप हो गया।

हरिदास उत्तरीय धो चुका था। उसने कहा—"तुम घर जाओगे?"

"हाँ।"

"मुझे मधूकपुर जाना है। सोच रहा हूँ, यहीं से चला जाऊँ।"

मधूकपुर यहाँ से दो मील दक्षिण को ओर एक छोटा गाँव था। वहाँ हरिदास की बहन थी।

धीरज ने कहा—"चले जाओ। मैं घर में कह दूँगा।"

हरिदास स्नान करके चला गया। धीरज सीढ़ियाँ तै करके सीढ़ी पर पहुँचा। नदी-तट पर बैठी हुई बालिका ने एक बार कंधे पर से झाँककर पीछे देखा; पर यह लक्ष्य करके कि युवक ने उसे देख लिया है, वह तुरंत मस्तक नत करके कलसी माँजने लगी।

सूर्य क्षितिज से बहुत ऊपर चढ़ आया था। कलसी माँजकर और मुँह धोकर बालिका अपने छोटे भतीजे के लिये तट पर के रंगीन और श्वेत प्रस्तर-खंड बीनने बैठ गई। इसी समय एक अश्वारोही सैनिक अपने अश्व को पानी पिलाने के उद्देश्य से राजपथ से नीचे उतरकर नदी के किनारे-किनारे चलने लगा। धीरज उसे देखकर सीढ़ी पर ही ठिठक गया था। सैनिक घोड़े को लेकर नदी में उतरा। धीरज आगे बढ़कर वहीं खड़ा हो गया, जहाँ से वह उतरा था, और एकटक होकर उसे घूरने लगा।

सैनिक ने घोड़े को पानी पिलाया। तदुपरांत

वह अपने से थोड़ी दूर पर बैठी बालिका के निकट पहुँचकर बोला—"तुम इसी गाँव में रहती हो ?"

बालिका ने मस्तक ऊपर उठाकर कहा—"हाँ।"

"रोहित ठाकुर को जानती हो ?"

"क्यों नहीं। वह तो मेरे घर के सामने ही रहते हैं।"

"अभी घर पर होंगे ?"

"कदाचित् ही हों। कल सिद्धपुर गए थे। अभी तक तो लौटे नहीं।"

"वह मेरे मामा होते हैं। आ जायँ, तब कह देना कि तुम्हारा भांजा धनंजय कान्यकुब्ज गया है। लौटते समय मिलेगा।"

बालिका बोली—"आप चलिए न। संध्या तक आ ही जायँगे।"

"नहीं। मुझे आवश्यक कार्य है।"

सैनिक ने घोड़े को मोड़ा और उस पर सवार होने के पहले वह बालिका के सलोने मुख-मंडल को घूरकर देखता गया। वह नदी की सैकत भूमि को

पार करके ऊपर पहुँचा। वहाँ धीरज खड़ा था। उसने अपना सिर उठाकर पूछा—"तुम कहाँ आए थे?"

सैनिक को यह प्रश्न बड़ा अपमानजनक जान पड़ा। उसने कहा—"तुम्हें प्रयोजन? सैनिक हूँ। जिधर जी चाहा, निकल पड़े।"

वह चला गया। धीरज कुछ देर तक उसे घूरता रहा। फिर मन-ही-मन हँसकर बोला—"वाह! कहता है 'सैनिक हूँ।' जैसे कोई असाधारण वस्तु हो।"

वह घूमता हुआ गाँव की ओर चला गया।

बालिका ने इस समय अंचल-भर पत्थर बीन-कर रख लिए थे। उसने जल से भरी हुई कलसी उठाई और घर का मार्ग लिया।

वह देवलपुर के लखनजू अहीर की पुत्री जमुना थी।

२

देवलपुर में अधिकतर अहीरों और कुर्मियों का वास था। उनमें लखनजू अहीर का घर ही सबसे अधिक संपन्न और प्रतिष्ठित माना जाता था। अपने पिता के जमाने में वह कालिंजर में रहता था। इस कारण गाँव में रहते हुए भी उसमें नागरिकता का भाव था। उसकी दो संतानें थीं। ज्येष्ट पुत्र कुंजन घर का काम-काज सँभालता था। पुत्री

जमुना अभी अविवाहित थी। वह जब दो वर्ष की थी, तभी उसकी माता का देहांत हो गया था। मातृहीना बालिका पर पिता के लाड़-प्यार की सीमा नहीं थी। अकेली बहन पर भाई का जो स्नेह होता है, वह भी उसे प्राप्त था। कर्णवती के उस पार जो शिवालय था, वहाँ एक ब्राह्मण पंडित रहते थे। लखनजू ने उनके द्वारा अपनी पुत्री को देवनागरी और संस्कृत की शिक्षा दी थी। कुंजन भी कभी-कभी विनोद-वश अपनी बहन को बर्छा और तलवार चलाना सिखाने बैठ जाता था।

लखनजू को अपनी इस कन्या के रूप और गुण पर इतना विश्वास था कि वह उसका विवाह किसी अहीर या कुर्मी के यहाँ न करके क्षत्रिय के यहाँ करना चाहता था। इस संबंध में उसने गाँव के उन अहीरों की परवा नहीं की, जो इस प्रकार के संबंधों के पक्ष में नहीं थे। तीन साल की दौड़-धूप के बाद उसे अजयगढ़ में एक क्षत्रिय वर मिल गया। लड़का भले घर का था। कन्या के रूप और गुण

की कथा पर मुग्ध होकर उसने उसके अहीर होने का ख़याल नहीं किया था। बातचीत पक्की हो गई थी। पर अभी पाँच-छः दिन हुए, समाचार आया कि लड़के की किसी रोग से अचानक मृत्यु हो गई है। लखनजू को बड़ा दुःख हुआ। उसने इसे लड़की का अभाग्य ही समझा; क्योंकि उन दिनों कोई भी यशस्वी क्षत्रिय सहज ही में अहीर की क़न्या को ग्रहण करने के लिये तैयार नहीं होता था। कुंजन ने पिता से कहा—"दाऊ, अहोर के भी तो बहुत-से अच्छे लड़के मिल जायँगे। जमुना बड़ी हो गई है।"

लखनजू बोला—"जहाँ तक ऊँचा कुल मिल जाय, अच्छा है। जमुना कुछ ऐसी तो है नहीं कि उसे ठेलने की जरूरत पड़े, और फिर एक हिसाब से उसका विवाह क्षत्रिय के घर में ही होना चाहिए; क्योंकि तुम्हारी मा क्षत्रिय-घर की थीं।"

परंतु उस दिन धीरज नाम के उस युवक ने कर्णवती में स्नान करते समय अपने साथी हरिदास से ज़ोर देकर यह बात क्यों कही थी कि इस जन्म

में तो लखनजू उसके साथ अपनी कन्या का विवाह नहीं करेगा, इसका एक इतिहास था।

धीरज कुर्मी था। इसका यह मतलब नहीं कि उन दिनों अहीर कुर्मियों को अपनी लड़की नहीं देते थे। मगर बात यह थी कि एक समय धीरज के पिता सुजान की देवलपुर में वैसी ही धाक थी, जैसी लखनजू की। सुजान अपनी तत्परता और कर्तव्य-परायणता से कालिंजराधिपति की सेना में एक उच्च पदाधिकारी बन गया था। यहाँ तक कि गाँव में भी सुजान से सुजानसिंह हो गया। यह बात लखनजू को बिलकुल अच्छी नहीं लगी। वह सुजान से ईर्ष्या करने लगा। वह क्षत्रिय नहीं था; पर मान-मर्यादा और सामाजिक प्रतिष्ठा में अपने को गाँव के अहीरों से कुछ बड़ा और कुर्मियों को अपने से कुछ छोटा समझता था। उसने लोगों को सुजानसिंह के खिलाफ़ करना चाहा। परंतु उसे सफलता नहीं मिली। इस कारण उसका विद्वेष और भी विषम हो गया।

इसके बाद ही एक घटना और घटी। सुजानसिंह

की मृत्यु के बाद उसकी विधवा पत्नी और एक-मात्र पुत्र धीरज को राज्य की ओर से सौ निवर्तन * भूमि, दस भैंसें और बीस महुए के वृक्ष प्रदान करने की आज्ञा हुई। राजाज्ञा का पालन हुआ। वृक्ष और भैंसें तुरंत दी गईं। परंतु भूमि के लिये बड़ी कठिनाई आ पड़ी। देवलपुर में आसपास चरोखर और राँकड़ थी। जितनी मार थी, वह गाँव के अहीरों के अधिकार में थी। उसमें से लखनजू के पास ही सबसे अधिक भूमि थी, अर्थात् पाँच सौ निवर्तन। मंडलाधिपति की दृष्टि उस पर पड़ी। कालिंजर में रहते समय उससे और लखनजू से किसी बात पर बिगड़ गई थी। उसने तबका बदला निकाला। यदि वह चाहता, तो धीरजसिंह को अपने मंडल के किसी दूसरे ग्राम की और भी अच्छी भूमि पुरस्कार में दे सकता था। पर उसने ऐसा नहीं किया। लखनजू के नाम एक आज्ञा निकाल दी कि राज्य के लिये सौ निवर्तन भूमि की आव-

---

* भूमि की प्राचीन माप (१०० वर्गगज=१ निवर्तन)

श्यकता है; वह तुम्हारे पाँच सौ निवर्तन से ली जायगी। तुम्हें उसका पुरस्कार मिल जायगा। लखनजू नाहीं नहीं कर सका। उसने समझा, कर्णावती के तट पर कोई मंदिर अथवा जलाशय बनेगा। जमीन दे दी और पुरस्कार ले लिया। परंतु बाद में यह ज्ञात होने पर कि वह भूमि सुजानसिंह की विधवा पत्नी को देने के लिये थी, वह आहत सर्प की भाँति बल खाकर रह गया। उससे अपनी पैतृक संपत्ति का मोह नहीं छोड़ा गया। उसने भूमि को पुनः अपने अधिकार में कर लेने के अनेक प्रयत्न किए; पर सफलता नहीं मिली। अंत में एक दिन वह अपने मानापमान का विचार न करके धीरज के निकट गया और बोला—"देखो भैया, हमारी भूमि लौटा दो, नहीं तो तुम्हारे लिये अच्छा न होगा। उसके बदले में हम तुम्हें कभी दूसरे गाँव की दो सौ निवर्तन दिला देंगे।"

धीरज को लखनजू की और सब बात ठीक मालूम हुई, परंतु वह किसी की धमकी सहना नहीं

जानता था। उसने कहा—"तुम्हें जो सूझे, सो करो। मैं भूमि क्यों दूँ ?"

उसकी मा ने समझाया कि बेटा क्यों झगड़ा करते हो। परंतु ऐसे मौक़े पर एक वार 'ना' करके फिर 'हाँ' करना उसकी आदत के बाहर था। लखनजू अपने हृदय के क्रोध से दावदह की भाँति दग्ध होता हुआ घर आया और बोला—"कल के छोकड़े की इतनी मजाल !"

कुंजन सब हाल सुनकर आग-बबूला हो गया। उसने गँड़ासा उठाकर कहा—"दाऊ, कहो तो अभी उसे शिक्षा दे आऊँ।" पर और चाहे जो कुछ हो, लखनजू का विवेक इतना जर्जर नहीं हुआ था। उसने लड़के को समझा-बुझाकर शांत कर दिया। यह बात धीरज ने भी सुनी। वह केवल घृणा से ओष्ठ कुंचित करके रह गया। तब से दो साल हो गए। देवलपुर के इन दो घरों का वैमनस्य वैसा ही चिर-नवीन बना हुआ है। कुंजन कभी धीरज के मकान के सामने से नहीं निकलता और धीरज कभी उसके

घर के सामने किसी से बात करने नहीं जाता। यदि कभी संयोग-वश दोनो की चार आँखें हो जातीं, तो कुंजन का चेहरा उसी भाँति तमतमा उठता और धीरज की भौंहें उसी तरह कुंचित हो जातीं, मानो वह तीन वर्ष पहले की घटना कल की बात हो।

और जमुना? पहले तो वह बहुधा धीरज से पूछ लेती थी—"कहाँ गए थे?" अथवा "कहाँ से आ रहे हो?" कदाचित् इस बोलने को बोलना कहते हों। पर जिस दिन उसका भाई गँड़ासा लेकर धीरज को मारने के लिये उद्यत हुआ था, उसके बाद की बात है। धीरज को ज्वर आ गया। वह कई दिन तक शय्या पर पड़ा रहा। कुछ स्वस्थ होने पर एक दिन बाहर निकला। मार्ग में जमुना मिल गई। वह कर्ण-वती से स्नान करके लौट रही थी। धीरज का उतरा हुआ चेहरा देखकर उसने पूछना चाहा—"कैसा जी है?" पर उसका मुँह नहीं खुला। वह उसके निकट से राह काटकर चली गई। तब से नदी के घाट पर

या ग्राम के किसी मार्ग पर बहुधा दोनों की भेंट हो जाती। धीरज उसे देखकर भी न देखता, और जमुना उसे लौटकर देखने की इच्छा रखते हुए भी न देख पाती।

३

जमुना ने उस दिन नदी से लौटकर अपने पड़ोसी रोहित को उसके भानजे का संदेश सुना दिया था। इसके कुछ दिनों बाद सहसा उसने धनंजय को अपने मामा के यहाँ बैठा देखा। वह सैनिक की दृष्टि बचा-कर अपने घर के भीतर चली गई। इसके पहले रोहित अपने भानजे से कह रहा था—

"भैया, यह तो बुरा समाचार है। कान्य-

कुब्जाधिपति राज्यपाल ने महमूद की वश्यता स्वीकार कर ली है ! छिः-छिः !"

धनंजय अपने मामा की इस बात पर ध्यान न देकर बोला—"यह सामने किसका मकान है मामा ?"

"यह एक लखनजू अहीर हैं। बड़े भले आदमी हैं। आज कहीं गए हैं, नहीं तो तुमसे मिलाता।"

"हाँ, अवश्य मिलूँगा। मुझे कालिंजर शीघ्र पहुँचना है। नहीं तो आज यहीं रहकर सबसे मिलता।"

वह पुनः घर की ओर देखने लगा। मानो वहाँ किसी परिचित व्यक्ति के मौजूद होने की संभावना हो। वह अपने मामा से कुछ पूछना चाहता था। परंतु वह प्रश्न उसे बड़ा बेतुका जान पड़ा। इतने में उसने एक बालिका को घर के भीतर प्रवेश करते देखा। वह जमुना थी। धनंजय के नेत्र-कोणों से संतोष फूट पड़ा। उसके मामा ने यह कुछ न देख पाकर कहा—"यह जो अभी निकल गई है, लखन-जू की लड़की है।"

धनंजय ने पूछा—"विवाह हो गया है ?"

"अभी नहीं। लखनजू इसके लिये किसी क्षत्रिय-वर की खोज में हैं।"

"अच्छा !" धनंजय इतना कहकर चुप हो गया। उसके मामा ने कहा—"अच्छी लड़की है। एक प्रकार से क्षत्रिय की ही समझना चाहिए। क्योंकि इसकी मा क्षत्रिय घर की थी।"

इसके बाद धनंजय भोजन करके कालिंजर चला गया।

४

फ़सल के दिन थे । खेतों में ज्वार खड़ी थी। कंजन आज प्रातःकाल अपनी पत्नी को लिवाने ससुराल गया था। इसलिये जमुना घर न रहकर पिता के साथ खेत पर बसने आई थी।

पास ही धीरज का खेत था। पर तीन वर्ष पहले इस पर लखनजू का अधिकार था। बीच में एक छोटी-सी मेंड़ थी। उस समय धीरज मचान पर बैठा गुथने को डोरी भाँज रहा था।

जमुना और उसके पिता ने खेत पर आकर ब्यालू की। फिर जमुना मचान पर जा बैठी। थोड़ी देर बाद संध्या हो गई और सप्तमी के चंद्रमा में प्रकाश की आभा फूट आई। मचान पर से वह कर्णवती के जल में डूबा हुआ जान पड़ता था। उस पार शिवजी के मंदिर में कोई भक्त घंटा-निनाद कर रहा था, जिसे सुनकर गाँव के कुत्ते और भी जोर से भूँकने लगे थे।

जमुना ने एक बार अपने खेत पर छिटकी हुई चाँदनी पर दृक्पात करके पड़ोस के खेत को देखा, फिर कहा—"दाऊ, तुम लेट जाओ। मैं तुम्हें महाभारत की कथा सुनाऊँगी।"

लखनजू लेट गया और जमुना मचान से नीचे आकर उसके निकट बैठ गई और वन-पर्व की कथा कहने लगी। बीच में उसे किसी की गुनगुनाहट सुनाई पड़ी। अनजान में ही उसका ध्यान अन्यत्र बँट गया। उसे गुस्सा चढ़ आया। केवल इसलिये कि धीरज के गुनगुनाने से उसको कथा में बाधा पड़ने लगी थी।

कथा सुनते-सुनते सहसा लखनजू ने कहा—"पेट में पीड़ा हो रही है जमुना।"

जमुना शंकित होकर बोली—"कैसी पीड़ा है पिताजी !"

"वही शूल की पीड़ा जान पड़ती है।" लखनजू ने कष्ट से अपना मुँह कुंचित करके कहा। जमुना उद्विग्न हो गई। वह पिता का शूल का दर्द जानती थी। कहा करती थी कि ऐसा शूल शत्रु को भी न उठे। वह चिंतित होकर बोली—"क्या करें ?"

लखनजू वेदना से अपने बदन को ऐंठकर बोला—"कुछ नहीं। अब तो रात काटना है, जैसे कट जाय।"

जमुना उसका पेट सूतने लगी। वह जानती थी कि इससे कुछ नहीं होगा। पिता को जब शूल उठता था, तब सारे उपचार व्यर्थ हो जाते थे। वह पैरों को सिकोड़कर और दोनो हाथों से पेट दबाकर निर्जीव-सा होकर पड़ा था।

जमुना ने व्यथित होकर कहा—"पिताजी !"

लखनजू एक बार "हूँ" करके वेदना से विषम

चीत्कार कर उठा। उसका दर्द बढ़ गया था। उसे ऐसा जान पड़ रहा था, मानो पेट में कोई कँटेदार गोला घूम रहा हो। उस समय चंद्रमा अस्त हो गया था और अर्द्धरात्रि की निस्तब्धता प्रगाढ़ हो चली थी। जमुना ने निरुपाय होकर एक बार निविड़ अंधकार को भेदकर सामने देखा। वह उठकर खड़ी हो गई। धीरज को बुलाने के लिये अपने खेत की मेंड़ तक गई और लौट आई। वह रोने लगी।

सहसा किसी ने बुलाया—"जमुना!" जमुना हड़बड़ाकर उठ बैठी। उसने अंधकार में अपने सम्मुख एक छाया देखी। उसे विश्वास नहीं हुआ। यह असंभव था कि धीरज उसके खेत में आवे। उसने कहा—"धीरज ?"

धीरज ने अग्रसर होकर कहा—"हाँ, मैं हूँ। क्या बात है ?" जमुना आत्मसंवरण करके बोली—"पिता के शूल उठी है।"

"तो इतना उद्विग्न क्यों होती हो ? एक चिकना छोटा पत्थर है ?"

"हाँ।" कहकर जमुना मचान के नीचे गई। वहाँ नदी के चिकने पत्थरों का ढेर लगा था। वह एक पत्थर ले आई। धीरज ने उसे कपड़े की एक गाँठ में बाँधकर लखनजू के दाहने पैर की नस पर एक बंध लगा दिया। लखनजू को उस समय होश नहीं था।

धीरज ने फिर कहा—"शूल अभी बंद हो जायगा। अब मैं जाऊँ?"

जमुना बोली—"देखकर जाना। कंकड़-पत्थर न लग जाय।"

धीरज जाने लगा। जमुना ने फिर कहा—"तुमने क्या पिताजी का कराहना सुन लिया था?"

"हाँ। मैं सो रहा था। सहसा आँख खुल गई।" वह चला गया। लखनजू कराह उठा और बोला—

"कौन आया था?"

"वह आया था।"

"कौन?"

जमुना ने धीरे से जवाब दिया—"धीरज।"

"वैसे ही आ गया था?"

"हाँ।"

''नस बाँध गया है?''

"हाँ।"

वह आह भरकर रह गया। थोड़ी देर बाद उसकी शूल की वेदना कम हो गई और वह स्वस्थ होकर सो गया। जमुना नहीं सोई। वह कभी पिता को देखती और कभी घूमने-फिरने लगती। उस दिन का प्रभात उसे बड़ा मनोरम जान पड़ा। वह उठकर खेत का चक्कर लगाने लगी। लखनजू कर्णवती पर गया था। उसने धीरज को खेत में देखा। वह उसे बुलाना चाहती थी और चाहती थी उसके प्रति अपने हृदय की समस्त कृतज्ञता प्रकट करना। पर भय और संकोच के कारण उसका मुँह नहीं खुला। धीरज ने उसे देखा। उसने खेत की मेंड़ पर उपस्थित होकर बुलाया—"जमुना!"

जमुना ने शंकित दृष्टि से इधर-उधर देखकर कहा—"क्या है?"

"दाऊ का शूल बंद हो गया था न?"

वह बाल सूर्य की किरणों से उद्भासित जमुना के प्रफुल्ल मुख-मंडल को देखने लगा।

"हाँ।" उसका हृदय धक-धक करने लगा। उसने जल्दी से कहा—"देखो, जान पड़ता है, तुम्हारे खेत में कोई है।"

धीरज ने पीछे देखा। खेत में कोई है या नहीं, उसने इसकी परवा नहीं की। परंतु तब तक जमुना ज्वार के पौदों में अंतर्द्धान हो गई थी।

५

संध्या होने में अभी विलंब था। धीरज अपने साथी हरिदास के साथ एक ऊँचे स्थान पर खड़ा हुआ राजपथ पर से होकर जा रही कालिंजराधिपति की पैदल सेना का दृश्य देख रहा था। हरिदास उसका मित्र, पड़ोसी और साझीदार था। धीरज ने उसे अपनी चरोखर का आधा भाग दे रक्खा था, जहाँ वह अपने और धीरज के ढोर चराने ले जाता था।

दोनो जब सैनिकों की दीर्घ पंक्ति, उनके परिच्छद और उनके अस्त्र-शस्त्र देखते-देखते थक गए, तब हरिदास ने कहा—"बड़ी विशाल सेना है !"

धीरज ने उत्तर दिया—"यह तो कुछ विशाल नहीं है। मेरे पिता जिस सेना के साथ छछ * के युद्ध में गए थे, उससे यहाँ के खेत कोसों तक भर गए थे।"

हरिदास ने पूछा—"यह छछ कहाँ है ?"

"यहाँ से बहुत दूर उत्तर की ओर सिंधु नदी के निकट है। पिताजी कहा करते थे कि वहाँ इतने ऊँचे पर्वत हैं कि देखने से पगड़ी नीचे गिर पड़ती है।"

"तब तो अवश्य बहुत ऊँचे होंगे।" फिर उसने पूछा—"यह सेना कहाँ जा रही है ?"

धीरज ने कहा—"कुछ ठीक पता नहीं। प्रातः-

---

* महमूद और आनंदपाल के बीच जो महायुद्ध हुआ था, वह छछ के मैदान में हुआ था। आनंदपाल की ओर से सहायता का निमंत्रण पाने पर कालिंजराधिपति महाराज गंड ने इसमें भाग लिया था।

काल कणवता के उस पार एक सैनिक से भेंट हुई थी। वह कहता था कि कान्यकुब्ज के राजा ने उत्तर-प्रदेश के एक म्लेच्छ राजा से बिना लड़े ही उसकी वश्यता स्वीकार कर ली है, महाराज कुमार उसी को दंड देने जा रहे हैं।"

हरिदास बोला—"जो बिना लड़े ही हार मान लेता है, उससे लड़कर क्या होगा?"

धीरज हँसने लगा। इतने में खेत के भीतर खड़खड़ाहट हुई। ऐसा जान पड़ा, मानो कोई ज्वार के पौदों को तोड़ता-मरोड़ता, पद-दलित करता आगे बढ़ रहा है।

धीरज ने चिल्लाकर कहा—"कौन है?"

कोई नहीं बोला। तब वह मेंड़ से नीचे उतरकर खेत में घुसा। वहाँ एक अश्व को लापरवाही से खेत में विचरण करते देखकर पहले क्षण तो उसे क्रोध आ गया। फिर वह उसे खेत से बाहर निकाल लाया।

हरिदास विस्मित होकर बोला—"यह कहाँ से घुस आया?"

धीरज बोला—"किसी सैनिक का होगा। कर्ण-वती के उस पार एक अश्वारोही सेना पड़ाव डाले पड़ी है।"

किशमिशी रंग का खूबसूरत घोड़ा था। उसने ज्वार के अनेक पौदे रौंद डाले थे, इसके लिये धीरज तनिक भी रुष्ट नहीं हुआ। उसने अश्व के ललाट पर हाथ फेरा। अश्व ने इस प्यार से लुब्ध होकर आगे की टाप उठाई। वह हींसा। धीरज ने कहा—

"अब क्यों हींसता है? इतनी ज्वार तो खा ली है और रौंद डाली।सो अलग!"

हरिदास बोला—"अजी यहाँ लाओ चढ़कर देखूँ कैसा है।"

धीरज ने कहा—"नहीं, किसी अन्य के घोड़े पर चढ़ना ठीक नहीं।"

"डर किस बात का। क्या हम चुराकर लाए हैं?"

कहकर हरिदास छलाँग मारकर घोड़े पर चढ़ गया।

धीरज ने कहा—"देखो, दूर मत जाना।"

"नहीं।" कहकर हरिदास ने हुमककर घोड़े को एँड़ लगाई। घोड़े ने हींसकर मस्तक उठाया और फिर चलने लगा। वह राजपथ से विपरीत दिशा में जा रहा था। हरिदास उस पर इस प्रकार अकड़कर बैठा था, मानो युद्ध-क्षेत्र में शत्रु पर प्रथम आक्रमण वही करेगा।

उसने फिर एक एँड़ लगाई। घोड़ा सरपट चलने लगा। उसका गाँव बाईं ओर पीछे छूट गया। इस समय वह कर्णवती के किनारे चल रहा था। थोड़ी दूर और चलने पर उसकी दृष्टि सामने आते हुए कुछ व्यक्तियों पर पड़ी। हरिदास ने घोड़े की लगाम खींच ली। तब तक वे लोग और भी निकट आ गए। सब-से आगे एक गोरा लंबे क़द का तरुण वयस्क व्यक्ति अकड़कर चल रहा था। उसके मुख-मंडल से सत्ता (रोब) टपकती थी। वह सेना का कोई उच्च पदाधिकारी जान पड़ता था। उसके पीछे दो साधारण वेशधारी सैनिक अपने कंधों पर आखेट लिए चले आ रहे थे।

पदाधिकारी को देखकर हरिदास का घोड़ा हींसा और ठहर गया, मानो उस व्यक्ति से उसका कोई विशेष परिचय हो। अश्व को रुकते देखकर सैनिक ने मस्तक उठाकर हरिदास से पूछा—

"अजो, तुम कौन हो?"

"आदमी हूँ।" हरिदास ने घोड़े पर से उत्तर दिया।

"यह तो मैं भी देखता हूँ। परंतु तुम अपने घोड़े पर सवार नहीं हो। इसी से संदेह हुआ था।"

हरिदास ने कहा—"आप ठीक कहते हैं। यह घोड़ा मेरा नहीं है।"

पदाधिकारी ने पीछे मुँह करके अपने साथी से कहा—"देखते हो, यह धनंजय का घोड़ा है।"

"निस्संदेह उसी का है।" साथी ने उत्तर दिया।

पदाधिकारी ने हरिदास से कहा—

"क्योंजी, यह तुम्हें कहाँ मिला?"

"मेरे खेत में घुस आया था।"

"इसी से क्या तुम्हारा हो गया?"

हरिदास कुछ सोचने लगा। उसने मन-ही-मन कहा—

"घोड़ा जब इन लोगों का नहीं है, तब अभी क्यों दिया जाय !" वह प्रकट में बोला—

"कदापि नहीं। मेरा कैसे हो सकता है ! परंतु इसने मेरी खेती नष्ट की है, इसलिये जिसका हो, वह आए, मेरी जो क्षति हुई है, उसकी पूर्ति कर जाय, और घोड़ा ले जाय।"

पदाधिकारी ने पूछा—"इसने तुम्हारी कितनी क्षति की है ?"

"बहुत हुई है। सब खेत खा डाला है और सब रौंद डाला है।"

"अच्छा !"

"जी हाँ।"

"फिर तुम अपनी इस क्षति-पूर्ति के लिये क्या चाहते हो ?"

"क्या बताऊँ। मेरी जो हानि हुई है—वह इस घोड़े से भी पूरी नहीं होगी।"

"अच्छा, चलो देखूँ, तुम्हारी कितनी हानि हुई है।"

"चलिए।"

पर वह सोच में पड़ गया। उसने पदाधिकारी को अपने खेत के एक छोर पर ले जाकर कहा—"देखिए, यह महुआ के उस पेड़ के निकट से घुसा था। वहाँ के सब पौदे टूटे पड़े हैं। क्या बताऊँ। सब खेत नष्ट कर दिया है। इधर से आपको दिखाई नहीं पड़ता।"

पदाधिकारी बोला—"मैंने देख लिया। वास्तव में तुम्हारी बड़ी हानि हुई है। धनंजय बड़ा पाजी है। अच्छा, तुम इस घोड़े को ले जाओ।"

हरिदास उसकी ओर देखने लगा।

पदाधिकारी ने कहा—"हाँ-हाँ, ले जाओ। ये सब सैनिक इस तरह अपने घोड़े छोड़ दें, तो प्रजा की सारी खेती नष्ट हो जाय।"

हरिदास अब बोला—"और महाराज, यदि किसी ने इस पर अपना अधिकार प्रकट किया तो ?"

"कैसे आदमी हो। तुम इसे चक्रधर नायक की आज्ञा से लिए जा रहे हो। जिसका यह अश्व है,

वह मेरा अधीनस्थ सैनिक है। इस प्रकार अपना अश्व छोड़कर उसने बड़ी असावधानी प्रकट की है। सैनिक नियम के अनुसार उसे बड़ा कठोर दंड मिलना चाहिए। यह तो कुछ भी नहीं है।"

हरिदास विस्मित हुआ और प्रफुल्लित भी। फिर भी उसे इस नायक की बुद्धि पर बड़ा तरस आया, जो अपने अधीनस्थ सैनिक का अश्व उसे दे रहा था। परंतु उसे इससे सरोकार? उसे तो मुफ़्त में एक घोड़ा मिल रहा था। उसने कहा--

"आपको अनेक धन्यवाद। अब यह घोड़ा मेरा है।" उसने मन में कहा—"और धीरज का भी।"

नायक आगे बढ़ गया। उसके साथी ने कहा—

"आपने यह ठीक नहीं किया।"

"ठीक क्यों नहीं किया! सैनिक न्याय के अनुसार धनंजय को दंड मिलना चाहिए।"

"परंतु आपने उसका अश्व दे दिया!"

"निर्धन कृषक की क्षति जो हुई है।"

साथी चुप हो गया। नायक होंठ चबाकर कुछ

सोचने लगा। वह कालिंजराधिपति की सेना में सौ घुड़सवारों का नायक था। अश्वारोही सैनिकों की एक टुकड़ी दोपहर को देवलपुर के पड़ाव पर ठहरी थी। वह उसी के साथ था। इस समय आखेट करके आ रहा था। उसने अपने साथी से कह तो दिया कि उसने ठीक किया है। परंतु उसे अपने इस न्याय में स्वयं एक कमजोरी नजर आ रही थी। वास्तव में उसने ठीक नहीं किया था। वह धनंजय से ईर्ष्या करता था। केवल इसलिये कि वह उसमें गर्व की अतिरिक्त मात्रा देखता था और दो-एक बार उसके समक्ष अपने को अपमानित समझ चुका था। यह एक वास्तव में विलक्षण बात थी। अधिकारी अपने अधीनस्थ कर्मचारी के गुणों पर मुग्ध न होकर उससे रुष्ट था। घोड़ा कहाँ जायगा, या उसका क्या होगा; अथवा वह कृषक के पास ही रहेगा या धनंजय छीन ले जायगा, इन बातों की उसने कुछ परवा न की। वह केवल उसे अपने सम्मुख नत-मस्तक देखना चाहता था और उससे कहना चाहता था

कि उसने अपराध किया है, इसलिये उसे दंड मिला है।

धीरज उस समय खेत के दूसरे छोर पर बैठा हरिदास की प्रतीक्षा कर रहा था।

६

हरिदास ने आकर कहा—"लो, तुम इस अश्व पर बहुत मुग्ध थे। मैं इसे तुम्हारे लिये ले आया हूँ।"

धीरज उसका आशय न समझ पाकर उसकी ओर देखने लगा। हरिदास ने सब हाल सुनाया और अंत में कहा—"मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि यह नायक, जिसका यह घोड़ा है, उससे शत्रुता रखता है।" "संभव है, परंतु यह ठीक नहीं हुआ।" धीरज

ने कहा—"ठीक हुआ हो या बे ठीक। अब तो घोड़ा अपना है। इसे तुम बाँधना। मेरे यहाँ स्थान नहीं। बाड़े में ठीक रहेगा।"

धीरज ने कुछ अपने आप और कुछ हरिदास को सुनाकर कहा—"यह कैसा नायक था!"

हरिदास बोला—"बहुत अच्छा था। हम लोगों को घोड़ा दे गया है। लो, इसे सँभालो। मैं अब घर जाऊँगा।"

हरिदास को भूख लग रही थी। वह चला गया। धीरज घोड़े की लगाम पकड़कर उसके पास खड़ा हो गया। वह उत्कीर्ण होकर हींसने लगा। धीरज उसकी चंचलता पर मुग्ध था। परंतु यह बात अच्छी तरह उसके चित्त पर नहीं जम रही थी कि घोड़ा बिलकुल अपना हो गया है। पर वह क्या करे? अश्व इस समय न्यायतः हरिदास का था। नायक उसे दे गया है। ऐसी दशा में उसे रखना ही होगा। और फिर अभी अश्व के स्वामी का भी तो पता नहीं। यदि वह आया, तो देखा जायगा।

वह घोड़े पर चढ़ गया। वह एक दफ़े उसकी चाल देखना चाहता था। उसने लगाम खींचकर एँड़ लगाई ही थी कि किसी ने पीछे से डपटकर कहा—"ओ छोकड़े ! नीचे उतर। किसके घोड़े पर पैर रख रहा है !"

धीरज ने पीछे घूमकर देखा—एक सैनिक आँधी की भाँति उसकी ओर बढ़ा चला आ रहा है। यह वही था, जिसे धीरज ने उस दिन नदी-तट पर देखा था। उसके रूढ़ि संबोधन से धीरज प्रज्वलित हो गया। दृप्त भाव से बोला—"अपने घोड़े पर !"

"ओहो ! अपने घोड़े पर !"

"जी हाँ।"

"चोर ! तेरा बाप भी कभी घोड़े पर चढ़ा है !" और सैनिक ने आकर धीरज की टाँग खींची। धीरज के लिये यह असह्य हो गया। वह क्षण-भर ठिठका और फिर घोड़े की लगाम छोड़कर उन्मत्त चीते की भाँति सैनिक पर टूट पड़ा और बोला—"जान पड़ता है, तुझे शिष्टता सिखानी होगी।"

अश्व अपने को स्वतंत्र पाकर सैनिक की बग़ल में आ गया और टापें उठाकर हींसने लगा, मानो धीरज पर आक्रमण करेगा।

सैनिक पहले तो हड़बड़ा गया। पर धीरज उसके सामने लड़का ही था। सैनिक ने उसे दबा लिया। वह गरजकर बोला—"नीच! पामर! मेरा घोड़ा लेकर मुझे शिष्टता सिखाएगा! समझ रख, यह घोड़ा मेरा है और इसे किसी दुरभिसंधि-वश हाथ लगाने का दंड है मृत्यु!" सैनिक ने कमर पर हाथ रक्खा। साथ ही किसी ने पीछे से कहा—"ठहरिए! महाराज गंड के राज्य में मृत्यु-दंड इतना सस्ता नहीं है।"

उस कोमल अथच दर्प-पूर्ण स्वर को सुनकर दोनो ही चौंक पड़े। सैनिक ने अपने सम्मुख लखनजू अहीर की कन्या को द्रुत वेग से घटना-स्थल की ओर अग्रसर होते देखा। इसके बाद ही उसकी कटार परतली से बाहर निकल आई और धीरज ने उसे ढकेलकर चित कर दिया। वह बोला—"वाह, तुम

क्या समझते हो कि कटार देखकर मेरा रुधिर सूख जायगा। अश्व तुम्हारा है, इसका प्रमाण क्या है?"

"इसका प्रमाण यह है!" कहकर सैनिक ने कटारी उठाई। वह उसे धीरज की पीठ पर भोंकना ही चाहता था कि जमुना ने विद्युद्वेग से लपककर उसकी कलाई पकड़ ली। धीरज उछलकर अलग खड़ा हो गया। उसने किंचित् मुसकिराकर कहा—"जमुना!"

यह सब बहुत शीघ्र हो गया। उस कोमल हाथ से अपनी कलाई छुड़ाने में सैनिक को अधिक प्रयास नहीं करना पड़ा। उसने रोष से प्रकंपित होकर कहा—

"बालिके! तुमने हमारे बीच में पड़कर अच्छा नहीं किया।"

जमुना ने अविचलित भाव से कहा—"मैं आपके बीच में कदापि न पड़ती, यदि यह न देखती कि आप सैनिक धर्म से च्युत हो रहे हैं।"

बालिका की ऐसी बात सुनकर सैनिक क्षण-भर

के लिये सन्नाटे में आ गया। उसने कहा—"देखता हूँ, अब मुझे अहीर की लड़कियों के निकट सैनिक धर्म की दीक्षा लेनी होगी। परंतु मैं तुमसे फिर कहता हूँ, तुम यहाँ से चली जाओ। इस समय यह स्थान तुम्हारे उपयुक्त नहीं है।"

जमुना कुछ कहना चाहती थी। धीरज बीच में ही सैनिक के सामने जाकर बोला—"मेरा भी तुमसे यही कहना है कि तुम यहाँ से चले जाओ। मैं व्यर्थ में तुमसे झगड़ा नहीं बढ़ाना चाहता। सैनिक उद्धत होते हैं। परंतु तुम अशिष्ट हो। यह मुझे उस दिन भी अवगत हुआ था। अश्व चाहे जिसका हो। परंतु अब यह मेरा है। इसने मेरी खेती नष्ट की है, इस कारण नायक चक्रधर ने मेरी क्षति-पूर्ति-स्वरूप यह अश्व मुझे दिया है।"

"चक्रधर नायक ने!" सैनिक सहसा विस्मय और क्रोध से नेत्र विस्फारित करके बोला—

"हाँ!"

"उसने मेरा हृदय दिया है।" और वह आह

भरके रह गया। "और अब मैं उसे प्राण रहते वापस नहीं करूँगा।"

"ठीक है।"

इसी समय कर्णावती के उस पार से आती हुई तुरही-ध्वनि से संध्या की निस्तब्धता रह-रहकर भंग हो उठी।

सैनिक उन्मत्त की भाँति बोला—"ठीक है। वह देखो, शिविर में तुरही-ध्वनि हो रही है। इस समय मेरे लिये वहाँ पहुँचना आवश्यक है। पर यह ठाकुर का घोड़ा है। इसे याद रखना।"

"किसी का हो। प्राण रहते तो दूँगा नहीं।"

"तो तुम्हारा प्राण हरण करके ही उसे लूँगा।" कहकर उसने तेज़ी से क़दम उठाए।

अश्व तब से उसकी बग़ल में खड़ा हुआ बारंबार नथुने फुला रहा था। अब वह हींसकर अग्रसर हुआ। सैनिक ने रुककर कहा—"हंस, इतने विचलित मत हो।" हंस चुप हो गया। धीरज ने उसकी लग़ाम पकड़ ली। वह बिगड़ उठा।

जमुना ने थोड़ी देर बाद कहा—"पहचानते हो, यह कौन था ?"

धीरज ने कहा —"मैं नहीं पहचानता । उस दिन नदी पर देखा अवश्य था ।"

"यह रोहित का भानजा धनंजय था ।"

घर जाकर धीरज ने हरिदास को सारी कथा सुनाई । हरिदास बोला—

"तुम बड़े गधे हो । उसे जीवित क्यों छोड़ दिया ?"

"मैं तो उसे अश्व भी दे देता ।"

"जी हाँ, फिर ?"

"पर अब कह आया हूँ कि प्राण रहते नहीं दूँगा ।"

७

ज्वार कट गई थी और खलिहान उठ गए थे। प्रातःकाल का प्रथम पहर था। सूर्य अभी क्षितिज से बहुत ऊँचा नहीं उठा था। एक सैनिक पथिक कर्ण-वती के पुल को पार करके राजपथ पर आया और फिर खेतों में होकर दक्षिण की ओर वृक्षों की सघनता में छिपे हुए देवलपुर ग्राम की ओर चलने लगा। उस-के हाथ में भाला था और कंधे पर धनुष झूल रहा

था। वह नदी के किनारे-किनारे चल रहा था। उसके भारी पैर, धूल-धूसरित परिच्छद और क्लांत मुख-मंडल इस बात के साक्षी थे कि वह लंबी यात्रा करके आ रहा है। फिर भी वह कष्ट-सहिष्णु जान पड़ता था, क्योंकि उसने नदी के जल में हाथ-पैर धोने या उसके किनारे के खिरनी-वृक्षों की छाया में घड़ी-आध घड़ी बैठकर विश्राम करने की आवश्यकता नहीं समझी। वह सतर्क भाव से अपने चारो ओर दृष्टि-पात करता जा रहा था।

तीन-चार खेत पार करने के उपरांत उसे एक पगडंडी मिली जो नदी के घाट से ग्राम की ओर जाती थी। वह क्षण-भर के लिये खेत की मेंड़ पर रुका और फिर पगडंडी पर चलने लगा। उसी समय एक बालिका नदी के जल में स्नान करके अपनी गीली धोती कंधे पर डाले हुए घाट की सीढ़ियाँ चढ़ रही थी। उसने सहसा सैनिक की कनपटी का थोड़ा-सा भाग देखा। वह चौंक पड़ी। साथ ही जहाँ-की-तहाँ ठिठककर रह गई। सैनिक जब मुँह फेरकर

आगे चलने लगा, तब वह भी सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर आई और सैनिक के पीछे चलने लगी।

गाँव के निकट पहुँचकर पगडंडी एक कच्ची सड़क में जाकर मिल गई थी। सड़क को पार करके एक गली में प्रवेश किया। वह अपनी उज्ज्वल तीक्ष्ण दृष्टि से दाएँ-बाएँ इस प्रकार देख रहा था, मानो किसी को खोज रहा हो, अथवा मार्ग में ही किसी प्रिय जन से भेंट हो जाने की संभावना हो। निस्संदेह यह इस गाँव में पहली बार नहीं आया था।

गली को पार करके वह एक खुले मैदान में पहुँचा। सामने एक विशाल वट-वृक्ष था। उसके नीचे किसी देवता की मूर्ति स्थापित थी। वह कुछ देर तक उसी को देखता हुआ विचार-निमग्न हो गया। फिर दाहनी ओर चल पड़ा। उसने एक गली में पैर रक्खे ही थे कि सहसा रुक गया। माथे की सिकुड़नें दूर हो गईं। नेत्रों में चमक आ गई। उसकी दृष्टि सामने एक मकान के वाड़े में बँधे हुए अश्व पर पड़ी थी। वह दौड़कर फाटक पर पहुँचा।

ताला पड़ा था। वह ठिठक गया। फिर उसने अपनी सारी शक्ति से फाटक मचमचा डाला। काठ के मज़बूत डंडे व्यर्थ कोलाहल करके रह गए। अश्व ने उसको देख लिया था। वह उत्कर्ण होकर हींसने और रस्सी तोड़ने लगा। सैनिक ने फाटक के भीतर हाथ डालकर कहा—"तुम बँधे हो हंस! मैं सोच रहा था कि पहले मामा के यहाँ जाऊँ या तुम्हें देखूँ।" सने घर के मुख्य द्वार की ओर देखा। कुंडी चढ़ी थी। वह कहता गया—"जानते हो, तुम्हारे लिये रात-भर चला हूँ। अभी तक जल ग्रहण नहीं किया।" अश्व नथुने फुलाकर हींसने लगा। मानो अपने स्वामी की सभी बातें समझ रहा हो। सैनिक कहने लगा—

"इस प्रकार नहीं। तुम्हें ले जाऊँगा। देखो—"

उसने अँगरखे के भीतर से एक कटार निकाली। "तुम्हारे बिना कान्यकुब्ज में मेरे पच्चीस दिन किस प्रकार कटे, मैं ही जानता हूँ। याद है, एक बार तुम युद्ध में हत हुए सैनिकों से पटी हुई भूमि पर पड़ी मेरी शिथिल और निर्जीवप्राय देह के निकट खड़े होकर

किस प्रकार रात-भर मेरी रक्षा करते रहे थे ! तुम मेरे वही हंस हो। तुम्हारे एक रोम के लिये मैं कालिंजर-जैसे सौ दुर्ग भी ठुकरा सकता हूँ। परंतु सैनिक न्याय अपरिवर्तनीय है। मैं राजविद्रोह नहीं कर सकता और न उस दिन उस कृषक युवक पर पुनः आघात कर सका। यदि वह बालिका बीच में न पड़ती, तो उसे जीवित न छोड़ता। नीच ! पामर ! क्लीव ! वह हंस को स्पर्श करने के योग्य भी नहीं है ! नदी से लेकर यहाँ तक घूर-घूरकर देखता आया हूँ। कहीं दृष्टि नहीं आया।" उसके नेत्र जल उठे। मानो अंतः-स्तल में धधकती हुई प्रतिशोध की आग उनके मार्ग से चिनगारियाँ छोड़ रही थी। उसने कहा—"घर पर भी कुंडी चढ़ी है। जान पड़ता है, कहीं गया है। अच्छा, तब तक मैं मामा के यहाँ हो आऊँ।"

अश्व की ओर एक करुण दृष्टिपात करके वह चला गया।

८

धीरज कर्णावती के उस पार जल में स्नान कर रहा था। इसके पहले वह पहाड़ी पर मोर के पंख ढूँढ़ने गया था।

किसी ने उसे बुलाया "धीरज !"

उसने चौंककर सामने देखा। उस किनारे पर जमुना थी। वह तैरकर उसके निकट पहुँचा।

जमुना ने जल्दी से कहा—"तुम कहाँ थे ?"

"क्यों ?"

"रोहित का भानजा आया है !"

"अच्छा !" धीरज के नथुने फूल गए और श्वास रुद्ध हो गया। "तुम सतर्क रहना, यही कहने आई हूँ।"

जमुना इतना कहकर चली गई। धीरज ने उसे घाट की सबसे ऊँची सीढ़ी के उस पार खेतों में अंतर्धान होते देखा। उसका तमतमाया हुआ चेहरा क्षण-भर के लिये स्निग्ध हो गया। वह जल से बाहर निकला। धोती पहनी और घर का मार्ग लिया।

भीतर प्रवेश करते हुए उसने एक बार घोड़े पर दृष्टि डाली। फिर मा से जाकर कहा—"मा; अभी यहाँ कोई आया तो नहीं था ?"

पुत्र का भाव देखकर तारा ने शंकित होकर कहा—"नहीं, यदि आया भी हो; तो मुझे ज्ञात नहीं। मैं भैंसों का बाड़ा साफ़ करने गई थी।"

धीरज क्षण-भर चुप रहा; फिर सहसा बोला—"मेरी कुल्हाड़ी कहाँ है ?"

"जहाँ तूने रख दी होगी। किंतु अब कुल्हाड़ी लेकर कहाँ जायगा ?"

"कहीं नहीं।" कहकर वह कुल्हाड़ी उठाने कोठे के भीतर चला गया।

बाहर आया। तारा ने कहा—"कहाँ जाता है ?"

"कहा तो, कहीं नहीं।"

"तुझ दिन-भर नदी में स्नान करने और इधर-उधर घूमने से छुट्टी भी मिलती है या नहीं ? आज हरिदास कहता था कि अपना एक बछड़ा नहीं दिखाई पड़ता। तनिक देख तो।"

धीरज चलते-चलते रुक गया और बोला—"कहाँ गया है ?" "वह तो कहता था कि नाहर ले गया है।"

"नाहर !" धीरज ने कहा।

देवलपुर के जंगल में कुछ दिनों से एक भीषण सिंह आ गया था। गाँव में और गाँव के आस-पास उसने बड़ा उपद्रव मचा रक्खा था। धीरज कई दिनों से उसकी टोह में था। दो-एक बार उसने घने वन में घुसकर उसे खोजा भी। पर न तो उसे सिंह मिला

और न उसकी माँद दिखाई दी। एक बार सिंह की खोज में जाकर वह एक चीतल अवश्य मार लाया था। तब से पंद्रह दिन हो गए, सिंह का आना नहीं सुनाई पड़ा और न गाँव में कोई दुर्घटना हुई। आज मा के मुँह से यह सुनकर कि सिंह उसका बछड़ा ले गया है, वह विस्मित भी हुआ और क्षुब्ध भी।

तारा ने कहा—"हाँ, नहीं तो बछड़ा कहाँ जायगा ?" फिर वह कुछ रुककर बोली—"तुझसे कितनी बार कह चुकी हूँ कि इस वृद्धावस्था में मुझसे काम नह होता। मैं अकेली क्या-क्या देखूँ। भैंसों को ढीलने और बाड़ा साफ़ करने में ही इतना दिन चढ़ आया।"

धीरज बोला—"मैं तो तुमसे नित्य ही कहता हूँ कि एक दासी रख लो।"

"दासी क्या करेगी ? मैं तो किसी स्वामिनी ही को यह घर सौंपना चाहती हूँ।"

तो मैं क्या कहता हूँ।" कहकर धीरज द्वार की ओर बढ़ा।

तारा ने कहा—"सुन तो। तूने कुछ उत्तर तो दिया ही नहीं।"

धीरज रुककर खड़ा हो गया।

तारा कहती गई—"कल हरिदास से बातचीत हुई थी। मैं तो चाहती हूँ कि तू जमुना से विवाह कर ले।"

धीरज बोल उठा—"तुम्हारी कुछ बात ही समझ में नहीं आती। क्या कहती हो।"

"तू काहे को समझेगा। पर मैं सब समझती हूँ। चल, जा।" फिर वह बोली—"कहाँ जा रहा है?"

"बछड़े को देखने।" कहकर धीरज घर से बाहर निकल आया।

उसने बस्ती के कई चक्कर लगाए। पर जिसे वह खोज रहा था, वह नहीं मिला। अंत में वह गाँव के बाहर एक पीपल के वृक्ष के नीचे रुका और बड़-बड़ाया—"इसे कहाँ खोजूँ? यदि गाँव में होता, तो कहाँ जाता? शायद नदी की ओर गया हो। या चला गया हो।"

वह उसी ओर चलने लगा।

मार्ग में हरिदास मिल गया। धीरज ने कहा—

"हरिदास !"

"क्या है ?" हरिदास ने उसे देखकर पूछा ।

"कुछ नहीं ।"

धीरज की दृष्टि में वह मूर्ख और अदूरदर्शी था ।

हरिदास ने कहा—"कुछ तो ।"

धीरज ने मानो कुछ सोचकर कहा—"हाँ, हमारा बछड़ा नहीं मिलता !"

हरिदास बोला—"वही मैं तुमसे कहने जा रहा था। नाहर ने खा लिया है ।"

"नाहर ने !"

"हाँ ।"

"तुम्हें कैसे मालूम हुआ ?"

"अच्छी तरह । अभी उसकी माँद देखकर आ रहा हूँ । बाहर मांस के ताजे लोथड़े पड़े थे ।"

"केवल देखकर ही !"

"हाँ । और क्या अपने प्राण देकर !"

"यदि मैं तुम्हारे स्थान पर होता, तो उसे बछड़ा खा लेने का उचित दंड देकर आता ।"

"अभी क्या हो गया। तुम आध घंटे में मेरे स्थान पर हो सकते हो।"

"वह स्थान कहाँ है?" धीरज ने पूछा।

"हस्तिशुंड के उस छोर पर। मैं बछड़े को खोजता हुआ वहाँ पहुँच गया। वहाँ एक गहरी कंदरा है। जान पड़ता है, वहीं उसकी माँद है। बाहर रुधिर से सनी एक घंटी पड़ी थी। वह अपने बछड़े की थी। इसी से मैं समझ गया कि रात में उसने अवश्य उसकी ब्यालू की है। फिर कहीं सवेरे-सवेरे कलेवा करने के लिये बाहर निकलकर मुझे न देख ले, इस-लिये वहाँ से चुपचाप लौट आया।"

धीरज ने कुछ सोचकर कहा—"तुम घर जा रहे हो?"

"हाँ।"

"मा से कह देना, मैं आज संध्या तक घर नहीं लौटूँगा।"

"पागल तो नहीं हुए हो!"

"क्यों?"

"कहाँ जाओगे?"

"नाहर की माँद देखने।"

"चलो, मैं भी चलूँ।"

"नहीं, मैं ऐसी मूर्खता नहीं करूँगा। अभी उसकी माँद देख आऊँगा। फिर एक दिन हम तुम दोनो चलेंगे।"

"पर सावधान रहना।"

धीरज ने कुछ नहीं कहा। हरिदास चला गया। धीरज ने अपनी कुल्हाड़ी देखी। फिर इधर-उधर दृष्टिपात करके उसने मन-ही-मन कहा—"अच्छी बात है। बछड़ा यों ही नहीं जायगा। वह अभी माँद में होगा। और यदि सैनिक यहाँ हुआ, तो लौटकर आने पर भी मिल जायगा।"

एक बार वह राजपथ की ओर गया। खेतों में घूम आया। नदी के घाट पर भी उतरा। फिर टी पर आया। पर उसके बाद पहाड़ी की ओर चल दिया। मार्ग में सोचने लगा—

"हरिदास को भी उसके आने की सूचना दे देता तो ठीक रहता।"

६

सैनिक अपने मामा के घर के सामने पहुँचा। मकान पर ताला पड़ा था। कुछ देर तक वह विमूढ़-सा होकर घर के सामने खड़ा रहा। फिर इधर-उधर देखने लगा। उस घर के सामने जो मकान था, उस पर एक युवक बैठा था। सामने एक सैनिक को खड़ा देखकर वह बोल उठा—"भद्र, आप किसे खोज रहे हैं?"

"मैं रोहितजी को देख रहा हूँ।"

"वे तो तीर्थ-यात्रा करने गए हैं।"

"कब गए हैं?"

"दस-बारह दिन हुए।"

सैनिक चुप हो गया। फिर चलते-चलते रुक गया। बोला—"कब तक आवेंगे?"

"कुछ कह नहीं गए।"

सैनिक निराश होकर लौटने लगा। सहसा चबूतरे पर बैठा हुआ युवक बोला—"क्या उनसे आपको कोई आवश्यक कार्य था!"

"हाँ, वह मेरे मामा होते हैं। यही कार्य था।"

"रोहितजी आपके मामा हैं! वाह! आइए, आइए! आपने पहले क्यों नहीं कहा।" साथ ही वह चबूतरे से नीचे उतर आया।

"पहले कह देने से क्या उनका कोई दूसरा पता मिलता!"

"नहीं, नहीं। आप तो हँसी करते हैं। रोहितजी

से हम लोगों को बड़ी घनिष्ठता है। आप उनके भानजे हैं। यदि यह बात हमें पहले ज्ञात हो जाती, तो इतने प्रश्नोत्तर की नौबत न आती। आइए। यदि वह नहीं हैं, तो हम लोग तो हैं। आपका घर है।" उसने सैनिक का हाथ पकड़ लिया। वह उसे घर के भीतर ले गया और बोला—"जल लाऊँ?"

"नहीं। कष्ट मत कीजिए।"

"देखिए, संकोच की आवश्यकता नहीं। इसे आप मामा का ही घर समझिए।"

"वही करूँगा।" कहकर सैनिक चारपाई पर बैठ गया।

युवक उसे तीक्ष्ण दृष्टि से देखकर बोला—

"रोहितजी के मुँह से आपका नाम तो कई बार सुना है, पर दर्शन का सौभाग्य आज ही प्राप्त हुआ है। मामा का घर मार्ग में होते हुए भी आपने कभी इस ओर आने की कृपा नहीं की।"

सैनिक बोला—"मामा को यहाँ ससुराल में आए आठ ही दस महीने तो हुए हैं। जब करतल में थे तब

उनके यहाँ साल में दो बार हो आता था। पर इधर अवकाश नहीं मिला। एक बार आया था, तब सुना कि आप घर पर नहीं हैं।" युवक ने कहा—"हाँ, आप अवश्य आए थे। आपके मामा ने कहा था।" फिर उसने पूछा—"जान पड़ता है, आप कान्यकुब्ज से लौट रहे हैं।"

"हाँ।"

"वहाँ का क्या समाचार है? राज्यपाल का क्या हुआ?"

"उसे उचित दंड मिला है। महाराज के आश्रित की आज्ञा से दूबकुंड के मांडलिक अर्जुनदेव ने अपने हाथ से उसका शिरच्छेदन किया है।"

"ठीक हुआ। अब कोई राजा इस प्रकार विदेशी राजा की शरण में जाने को उद्यत नहीं होगा।"

इसके बाद दो-चार बातें और हुईं और सैनिक चलने के लिये उतावला हो उठा। युवक ने नहीं जाने दिया। उसने कहा—"यह तो असंभव है। आप भोजन किए बिना नहीं जा सकते।"

सैनिक को बैठना पड़ा। युवक ने कहा—"एक बात है। हम लोग अहीर हैं।"

सैनिक बोल उठा—"अरे, आप इसकी चिंता मत कीजिए। मैं जाति-पाँति का पचड़ा नहीं मानता। मैं तो मनुष्य हूँ और सैनिक हूँ। युद्ध-क्षेत्र में झोले में डाल-कर रोटी खानी पड़ती है। आप तो दाल-भात खिलाइए।"

सैनिक के इस निश्छल व्यवहार से युवक मन-ही-मन अत्यंत प्रसन्न हुआ। उसने कहा—"आप तो बड़े उदार विचार रखते हैं। जान पड़ता है, अंतर-जातीय विवाह के भी विरोधी नहीं होंगे।"

सैनिक बोला—"मैं तो किसी भी बात का विरोधी नहीं हूँ, और अंतरजातीय विवाह तो अपने यहाँ पहले से चले आते हैं।"

युवक प्रफुल्ल-चित्त सैनिक के भोजन का प्रबंध करने भीतर गया और अपनी पत्नी से बोला—

"लो, जिनकी खोज में हम कालिंजर गए थे, वह स्वयं ही यहाँ आ गए।"

"कौन ?" उसकी पत्नी ने पूछा।

"रोहितजी के भानजे।"

"अच्छा!"

"हाँ। भोजन तो तैयार है न? वह बहुत जल्दी में हैं। इस समय शायद ही बात हो पाए। पिताजी भी घर पर नहीं हैं।"

"जैसा समझो।"

सैनिक अपने को एकांत में पाकर घर की साज-सज्जा देखने लगा। पर मुहूर्त-मात्र में ही उसका मन न-जाने कैसा हो गया। वह अस्थिर और अशांत हो उठा। यहाँ तक कि उस घर में जब उसे किसी को परिचित मूर्ति के दर्शन नहीं हुए और न बहुत सजग होकर सुनने पर भी किसी का परिचित कंठ-स्वर सुनाई पड़ा, तब वह गृह-स्वामी के स्नेह-पूर्ण आतिथ्य की अवहेला करके चलने के लिये उद्यत हो गया। इतने में द्वार पर किसी की छाया पड़ी। वह जमुना थी। कर्णवती पर दुबारा जाकर वहाँ से अभी लौट रही थी। उसे देखकर सहसा सैनिक के नेत्र-कोणों में उल्लास फूट पड़ा। उसने मुग्ध और

विमोहित होकर जमुना के हाल के धुले हुए कमनीय मुख-मंडल पर दृष्टिपात किया। उस दृष्टि का स्पर्श पाकर जमुना के कपोल-प्रदेश आरक्त हो गए। वह अपने सलज्ज, नीलोत्पल नेत्रों को अवनत करके तेजी से भीतर चली गई। उसे सैनिक का व्यवहार बड़ा रूढ़ और अभद्र जान पड़ा।

भाई ने उसे देखते ही कहा—"जमुना, रोहितजी के भानजे आए हैं।"

"हाँ।"

"उनके लिये शीघ्र भोजन का प्रबंध करो।"

जमुना ने कुछ नहीं कहा। वह आँगन में धोती फैलाकर रसोई-घर में पहुँची। भाभी ने देखते ही कहा—"आजकल घंटों कर्णवती में स्नान करती हो, क्या बात है?"

"क्यों?" जमुना ने अन्यमनस्क भाव से कहा।

"भगवान् ने एक तो तुम्हें वैसे ही गोरा रंग दिया है, तुम उसे और गोरा बनाकर क्या करोगी?"

जमुना ने खीझकर कहा—"यदि कर्णवती के जल

में स्नान करने से आदमी गोरे निकलते, तो तुम स्वप्न में भी कुएँ के जल से स्नान करना पसंद नहीं करतीं।"

जमुना की भाभो का रंग साँवला था। ननद की बात सुनकर वह चुप हो गई।

जमुना ने फिर कहा—"भैया को तुम्हीं परोस देना भाभी। मेरे मस्तक में पीड़ा हो रही है।"

उसकी भाभी ने हँसकर कहा—"मैं इस पीड़ा का कारण समझती हूँ। यहाँ आओ, पहले तुम्हारी चोटी गूँथ दूँ।"

"फिर गूँथ देना।" कहकर जमुना पास के घर में चली गई।

१०

सैनिक विमूढ़ होकर बैठा था। कुंजन ने आकर उसे चौंका दिया।

इस पल-भर के भीतर ही उसके नेत्रों के सम्मुख जमुना की एक-एक करके चारो मूर्तियाँ आ गई थीं। पर उन सबमें आज की यह मूर्ति बड़ी मनोरम और आकर्षक थी। यह कुछ-कुछ वैसी ही थी, जैसी उसने नदी-तट पर प्रथम बार देखी थी। उस घटना

को छः महीने से अधिक हो गए। वह कान्यकुब्ज जाते समय अपने अश्व को जल पिलाने के लिये कर्णवती के तीर पर उतरा था। उस समय जमुना मुँह धोकर बैठती जाती थी और अपने भतीजे के लिये तट पर की शुक्तियाँ और रंगीन प्रस्तर-खंड बीन रही थी। उसका धुला हुआ गोरा मुख-मंडल सूर्य के उज्ज्वल आलोक में तपे हुए स्वर्ण की भाँति दमक रहा था, और भीगे हुए केशों में प्रकाश की अनंत किरणें आँख-मिचौनी खेल रही थीं। उसी दिन उस मूर्ति की प्रत्येक रेखा उसके हृदय-पटल पर अंकित हो गई थी। पर आज उन रेखाओं ने भीतर-ही-भीतर न-जाने कौन-से मंत्र-बल द्वारा उज्ज्वल-से-उज्ज्वल-तर होकर अपनी आभा से उसके समस्त हृदय को आलोकित कर दिया।

कुंजन के अत्यधिक आग्रह करने पर उसने भोजन अवश्य किया। पर उसका चित्त और भी विकल हो गया था। भोजन करते समय जमुना की मूर्ति बराबर उसके सम्मुख रही। उसे सहसा यह जानकर बड़ा क्षोभ

हुआ कि वह अपने अश्व के लिये ही यहाँ नहीं आया है; वरन् उसके यहाँ आने में बालिका भी एक निमित्त थी। उसने यह भी देखा कि कान्यकुब्ज में रहते समय जब-जब उसने अपने अश्व का ध्यान किया, तब-तब उस उद्धत युवक के साथ—जिसका वध करने का वह विचार कर रहा था—इस बालिका की मूर्ति अज्ञात रूप में ही छाया की भाँति उसके सम्मुख आ गई; तो क्या वह उसे प्यार करने लगा था ? उसके भाई को अपने सम्मुख बैठा देखकर इस विचार से उसे संकोच अवगत हुआ।

भोजन करके सैनिक तुरंत चलने के लिये तैयार हुआ।

कुंजन ने कहा—"ठहरिए। पिताजी आज राजा-पुर गए हैं। उन्हें आ जाने दीजिए। वह आपसे मिलने के बड़े इच्छुक थे।"

सैनिक ने नहीं माना। उसने कहा—"आज्ञा दीजिए। मुझे संध्या को ही कालिंजर पहुँचना है।" वह उठकर घर से बाहर निकल आया।

कुंजन ने कहा—"आपकी इच्छा। जाइए, पर फिर मिलने के लिये।"

"तथास्तु।" कहकर सैनिक चल दिया।

गाँव का एक चक्कर लगाकर वह उसी स्थान पर पहुँचा, जहाँ उसका अश्व बँधा था। उसे देखते ही हिनहिना उठा।

घर के किवाड़ भीतर से बंद थे। वह किसी को बुलाना चाहता था। इतने में उसकी दृष्टि एक युवक पर पड़ी। वह हरिदास था, और अपने घर के सामने बैठकर रस्सी बट रहा था।

सैनिक ने उसके निकट जाकर पूछा—"क्यों जी, यह घर किसका है?"

हरिदास ने उसे सिर से पैर तक तीक्ष्ण दृष्टि से देखकर कहा—"धीरजसिंह का।"

"वह इस समय भीतर होगा?"

"नहीं।"

"कहाँ गया है?"

"आप जानकर क्या कीजिएगा?" हरिदास ने पूछा।

वह है हस्तिशुंड। वहाँ हाल ही में एक सिंह आया है। सँभलकर जाइएगा।" और वह मुसकिरा दिया।

सैनिक ने वह मुसकिराहट देख ली। उसकी भौंहें तन गईं। हरिदास बोला—"अजी मैं ठीक कह रहा हूँ। महीने-भर की बात है, वह एक चरवाहे की भैंस ऐसे उठाकर ले गया था, जैसे बिल्ली चूहे को ले जाती है। फिर आप तो भैंस से भारी नहीं होंगे।"

"और तू तो उसको एक दाढ़ में समा जायगा।" सैनिक ने नेत्र आरक्त करके कहा।

"तब फिर उस दाढ़वाले को देख न आओ, कैसा है।"

"हाँ-हाँ, वहीं जाता हूँ।"

कहकर वह द्रुत वेग से पहाड़ को ओर चल दिया।

११

धीरज पहाड़ी की तल-भूमि पार करके सँभल-सँभलकर ऊपर चढ़ रहा था।

पर्वत-शिखर के वृक्ष दूर से जितने सघन ज्ञात पड़ते थे, अब वे उतने ही विरल हो गए थे। सूर्य की तिरछी किरणें खिरनी, तेंदूँ, अचार आदि वृक्षों के शाखा-जाल को भेदकर धीरज के मुख-मंडल को उद्दीप्त कर रही थीं। लता-गुल्मों से आच्छा-

दित भू-भाग पर प्रकाश के गोल घब्बे नाच रहे थे। आगे चलने पर चाँदी की चादर की तरह चमकता हुआ कर्णवती का जल दिखलाई पड़ने लगा। कर्णवती उस पहाड़ी को परिवेष्टित करती हुई दक्षिण को मुड़ गई थी। धीरज पर्वत के किनारे पर खड़ा होकर क्षण-भर तक नदी के जल में प्रतिफलित होती हुई सूर्य की किरणों का ज्वलंत प्रकाश देखता रहा। फिर वह आगे बढ़ा। वहाँ जमीन ढालू हो गई थी और वृक्षों की सघनता बढ़ गई थी।

धीरज ने बीहड़ वन में प्रवेश किया। चारो ओर सन्नाटा था। दिन में भी रात्रि का भ्रम होता था। सूर्य की किरणें कठिनता से भीतर पहुँचती थीं। धीरज यहाँ कई बार आया था। पर आज वह बहुत सजग और सचेत था। हाथ की कुल्हाड़ी बहुत दृढ़ता से पकड़े हुए था। कभी-कभी पीछे खड़-खड़ाहट की आवाज़ सुनकर चौंक पड़ता। मानो कोई उसका पीछा कर रहा हो। वह ठिठक जाता। मुड़-

कर देखता। फिर यह समझकर कि झाड़ी में से कोई कबूतर निकला है अथवा कोई वन्य पशु निकलकर भागा है, वह आगे चल पड़ता।

सहसा वह थमा। उसने अपने आस-पास किसी वन्य पशु की उपस्थिति का अनुभव किया। उसे सड़े मांस की उग्र गंध आई। वह समझ गया कि वह सिंह की माँद के निकट है। उसने कुल्हाड़ी सँभाल ली। वह इधर-उधर देख हो रहा था कि एक झुरमुट से सिंह बाहर निकलकर उस पर टूट पड़ा। वह फ़ुर्ती से नीचे बैठ गया। सिंह के पिछले पंजे उसकी पीठ पर पड़े। धीरज उछला और उसने लौटकर बग़ल से सिंह के मस्तक पर कुल्हाड़ी का भरपूर हाथ जमाया। सिंह ने भयानक गर्जना करके अपनी गर्दन मोड़ी और दाढ़ें निकालीं। धीरज के सामने अँधेरा छा गया। उसे केवल एक सनसनाहट सुनाई पड़ी। सिंह ने गर्जन और आर्त-नाद किया। धीरज ने देखा कि सिंह की गर्दन में एक तीर ठँसा हुआ है। तुरंत ही एक तीर और आया और वह भी गर्दन में ठँस गया।

धीरज के देखते-देखते वह विकराल पशु मृत्यु की वेदना से गों-गों करके चित होकर शांत हो गया। पर यह सब कैसे हुआ? किस प्रकार यह भीषण पशु पलक मारते मृतप्राय होकर भूमि पर लोट गया? कौन-से अलक्ष्य करों ने धीरज की नन्ही-सी जान पर तरस खाकर उस पशु के कठोर शरीर को दो पैने और अचूक बाणों से भेद दिया? धीरज को अधिक देर तक विस्मय नहीं करना पड़ा। उसने अपने सामने किसी की छाया देखी और दूसरे क्षण देखी अपने उसी पूर्व-परिचित सैनिक की मूर्ति। वह अपने भाले की नोक को मृतक सिंह के शरीर पर टेककर और उस पर अपना एक पैर रखकर धीरज के सामने खड़ा हो गया। क्षण-भर तक दोनो एक दूसरे को देखते रहे। धीरज महान् आश्चर्य के भाव से और सैनिक संतोष और लापरवाही की दृष्टि से।

अंत में सैनिक ने निस्तब्धता भंग की—

"तुम थे!"

"और तुमने क्या समझा था?"

"मैं तुम्हीं को खोज रहा था।"

"और मैं भी तुम्हारी टोह में था।"

"यदि इस समय चाहूँ, तो इस भाले से तुम्हारा मस्तक चूर्ण कर सकता हूँ।"

"यह तो इतना सहज और सरल नहीं है।"

"अच्छा, तो फिर प्रस्तुत हो जाओ।"

"मैं उद्यत हूँ।" और धीरज छाती तानकर खड़ा हो गया। परंतु उसने कुल्हाड़ी नहीं उबारी।

सैनिक क्षण-भर निस्तब्ध रहने के उपरांत किसी पूर्व-स्मृति की प्रेरणा से बोला—"तुम आत्म-रक्षा का प्रयत्न नहीं करोगे?"

"नहीं। जिन बाणों ने इस भीषण पशु का प्राणांत किया है, वे निस्संदेह तुम्हारे धनुष से निकले हुए थे—"

"फिर?"

"जिसने मेरे बचाने के लिये सिंह मारा है, उस पर मैं पहले हाथ नहीं उठाऊँगा।"

"धूर्त!" सैनिक ने सागर-वक्ष की भाँति क्षुब्ध होकर कहा—

"और तुमको मैं क्या कहूँ ?"

"तो तुम्हें युद्ध नहीं करना है ?"

"युद्ध की कुछ ऐसी अनिच्छा भी नहीं है।"

"जान पड़ता है, यहाँ पर लड़ने की तुम्हारी इच्छा ही नहीं है। कोई दूसरा समय और स्थान सही।"

"शीघ्र, और कोई भी स्थान।"

"कर्णावती के किनारे।"

"कब ?"

"जब तुम्हें समय मिले।"

सैनिक के अधरों पर एक बारीक मुसकिराहट आई, जो आधे पल में ही लीन हो गई। वह सिर उठाए हुए वहाँ से चला गया।

१२

रोहित ठाकुर का घर लखनजू के घर के सामने ही था। दस महीने हुए, वह अपनी ससुराल देवलपुर में आकर बस गया था। इसके पहले देवलपुर के निवासी उसे बहुत कम जानते थे, पर अब बस्ती के सभी लोगों से उसका हेल-मेल हो गया था।

लखनजू को जिस दिन मालूम हुआ कि उसका एक भानजा है और वह अविवाहित है, उसी

दिन से वह उसके साथ जमुना की सगाई का विचार करने लगा। इस संबंध में उसने रोहित से बातचीत भी की। रोहित ने जवाब दिया—"भैया, लड़का बड़ा सनकी है। वह तो विवाह करना ही नहीं चाहता।"

इसी से लखनजू को कुछ आशा हो गई। उसने कुंजन को कालिंजर भेजा। मालूम हुआ कि धनंजय लड़ाई पर गया है। पिता-पुत्र उसके लौटने की प्रतीक्षा करने लगे। दैव-योग से उस दिन वह स्वयं ही उनके घर आ गया। कुंजन उसे देखते ही उस पर आकृष्ट हो गया। उसने विचार कर लिया कि जिस तरह भी हो, इसके साथ जमुना का संबंध करना चाहिए।

सैनिक के चले जाने पर जमुना की भाभी ने उसके निकट जाकर कहा—"कहो, रोहित के भानजे का देखा ?"

"मैं तो इसे एक बार पहले भी देख चुकी हूँ।" जमुना ने उत्तर दिया।

"अच्छा ! तो यह कहो कि स्वयंवरा हो चुकी हो।"

"चलो हटो। तुम सदा ऐसी ही बातें करती हो।"

"पसंद है न ?"

"वह तो बड़ा अशिष्ट और उजड्ड है।"

जमुना सहसा गंभीर बन गई।

जमुना की भाभी ने उसकी ओर देखकर कहा—"तुम्हें मेरी सौगंध जमुना, सच बताओ।"

जमुना सहसा भाभी के कंठ से लिपट गई और अश्रु-रुद्ध कंठ से बोली—"मैं क्या बताऊँ, भाभी ?"

भाभी ने बहुत पूछा और अंत में उसके मन की बात जानकर उसने कहा—"यह तो असंभव है।"

संध्या को जब लखनजू राजापुर से लौटकर आया, तब कुंजन ने उससे धनंजय के आने की बात कही। सुनते ही लखनजू ने कहा—"रोक क्यों नहीं लिया ?"

"वह बहुत जल्दी में था।"

"क्या राय है ?।"

"बहुत अच्छा आदमी है। जमुना के लिये इससे उपयुक्त पात्र नहीं मिलेगा।"

"तुमने कुछ चर्चा छेड़ी थी ?"

"इसका मौक़ा ही नहीं मिला।"

"तुम क्या समझते हो, वह राज़ी हो जायगा ?"

"इसका भार मुझ पर रहा। जमुना का विवाह अब शीघ्र कर देना चाहिए। मैं कल ही कालिंजर जाकर उससे मिलूँगा।"

पिता की भी यही सम्मति हुई। कुंजन दूसरे ही दिन कालिंजर गया। वहाँ पहुँचते-पहुँचते संध्या हो गई। उस दिन धनंजय से भेंट नहीं हुई। दूसरे दिन प्रातः-काल वह अचानक ही मिल गया। बड़े प्रेम से मिला, और कुंजन को अपने घर ले गया। वहाँ अकेली उसकी मा थी। धनंजय ने कुंजन का परिचय दिया। उसने कुंजन का बड़ा आदर-सत्कार किया। संध्या को उपयुक्त अवसर देखकर उसने धनंजय के समक्ष विवाह का प्रस्ताव उपस्थित किया, साथ ही उससे यह कहना भी नहीं भूला कि वह उदार विचारों का

आदमी है, और अंतरजातीय विवाह को बुरा नहीं समझता, इस कारण इस विवाह में उसे किसी प्रकार की आपत्ति न होनी चाहिए। धनंजय पहले तो आश्चर्य से अवाक् होकर रह गया, फिर मानो गाढ़ चिंता में निमग्न होकर बोला—"मैं विवाह नहीं करना चाहता।"

"यह तो बिलकुल अनहोनी बात है। यह आपकी भीष्म-प्रतिज्ञा तो नहीं है?"

"सो बात नहीं है। सैनिक आदमी हूँ। दस दिन घर रहता हूँ, तो बीस दिन बाहर। ऐसी अवस्था में जान-बूझकर एक चिंता मोल लेने से क्या लाभ? अन्यथा तुम्हारे साथ संबंध स्थापित करने में मुझे कोई बाधा नहीं थी। प्रत्युत इसे मैं अपना सौभाग्य ही मानता।"

"यदि यह बात है, तो मैं भी तुम्हें अपनी बहन सौंपकर कृतकृत्य होना चाहता हूँ। क्या कहते हो?"

"जो तुम कहो।"

"प्रस्ताव स्वीकार करते हो?"

धनंजय दुबारा सोच में पड़ गया। फिर बोला—

"कल प्रातःकाल ही मुझे मालवे की यात्रा करनी है।"

"तुम सहर्ष जा सकते हो। इसमें बाधा ही कौन-सी है?"

"कई मास के उपरांत लौटूँगा।"

"विवाह तभी होगा।"

धनंजय फिर चुप हो गया। पग-पग पर मानो वह विरोधी विचारों के भँवर में पड़ जाता था।

कुंजन ने कहा—"क्या सोचते हो?"

"तब तक इस प्रस्ताव को विचाराधीन रक्खा जाय, तो कैसा?"

"वह भी संभव है। किंतु उस पर अभी विचार कर लेने में बाधा कौन-सी है।"

"अनेक हैं, और कुछ भी नहीं। आप तब तक प्रतीक्षा कर सकें, तो कीजिए, नहीं तो—"

"मैं आपकी अप्रसन्नता मोल लेने नहीं आया।" कुंजन ने बीच ही में कहा—"तो नहीं की आवश्यकता नहीं। हम लोग तब तक आपके विचार की प्रतीक्षा करेंगे।"

धनंजय ने कुंजन को देखा, फिर कहा—"आप मुझे विलक्षण आदमी जान पड़ते हैं। आज तक मेरी माता भी इस संबंध में मेरी स्वीकृति नहीं ले सकीं; किंतु आपने आते ही मुझे ऐसा मंत्रमुग्ध कर लिया कि मैं आपसे सहसा हाँ या ना कुछ भी नहीं कह सकता। किंतु आपसे एक बात पूछता हूँ। मुझ-सरीखे साधारण सैनिक के साथ आप अपनी जिस बहन का चिर-संबंध स्थापित करना चाहते हैं, इस विषय में आपने उसकी भी अनुमति ली है, या नहीं?"

"क्या आपका तात्पर्य जमुना से है?"

"हाँ।"

इस संबंध में उसकी अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं।"

"क्या जाने, आप भूलते हों।"

"मैं अपनी बहन को भली भाँति जानता हूँ। यदि आपको पाकर वह सुखी न हो सके, तो समझना चाहिए, वह निपट अभागिनी है।"

"यदि ऐसी बात है, तो इस संबंध में मैं अधिक प्रश्न नहीं करना चाहता। मैं मालवे से लौटने के बाद आपके प्रस्ताव का उत्तर दे सकूँगा। इस बीच में मुझे वहुत कार्य करने को हैं। क्या आप तब तक मेरी प्रतीक्षा कर सकेंगे?"

"अवश्य।" कुंजन ने प्रसन्न होकर कहा।

"आपको धन्यवाद।"

कुंजन उसी दिन घर लौट आया। उसने पिता से कहा—"धनंजय एक प्रकार से राजी है। वह अभी मालवे जा रहा है। वहाँ से लौटकर अपना अंतिम निश्चय प्रकट करेगा। मैं उसके निश्चय की प्रतीक्षा करने का वचन दे आया हूँ। हमें तब तक ठहरना होगा।"

पिता ने इस समाचार पर संतोष प्रकट किया।

पहले गाँव के दो-चार पंचों को फिर गाँव-भर को यह मालूम हो गया कि लखनजू की पुत्री का विवाह कालिंजर के किसी ठाकुर से होना निश्चित हुआ है। हरिदास ने यह बात धीरज से कही।

सुनकर उसे एक आघात-सा लगा। मुँह से कोई शब्द नहीं निकला। हरिदास बोल उठा—"क्या बात है? इस समाचार को सुनकर सहसा तुम्हारे चेहरे का रंग क्यों उतर गया?" वह हँसा।

"कुछ नहीं।" धीरज ने कंपित स्वर में माथा नवाकर कहा।

"कुछ तो?"

अंत में उसे स्वीकार करना पड़ा कि वह लखनजू की पुत्री को प्यार तो करता ही है, उससे विवाह करने में भी उसे कुछ संकोच नहीं।"

"ओहो, यह बात है!" हरिदास हँसकर बोला—"इसमें कौन-सी बाधा है? लखनजू से कहो न?"

"लखनजू से! इसके पहले मेरी जीभ कटकर गिर जाय, सो अच्छा।"

"तो मैं कह दूँ?"

"पागल तो नहीं हुए?" धीरज ने भौंहें सिकोड़कर कहा।

हरिदास ने फिर कुछ नहीं कहा।

१३

संध्या का समय था। जमुना नदी-तट पर बैल की रस्सी पकड़े हुए किं-कर्तव्य-विमूढ़ होकर खड़ी थी। उसके हाथ से एक बैल छूट गया था। वह दोनो बैलों को नदी में पानी पिलाने लाई थी।

जो बैल छूट गया था, वह बड़ा मरकहा था। कुंजन और जमुना को छोड़कर और किसी को

मजाल नहीं थी कि उसके ललाट पर हाथ रख ले। परंतु आज वह जमुना को भी नहीं मान रहा था। जमुना ने उसे एक बार पकड़ने की कोशिश की; परंतु वह कुलाँच मारकर उससे सौ गज़ दूर जाकर खड़ा हुआ। जमुना समझ गई कि अब उसे सामने से जाकर पकड़ना कठिन है। वह अपने बैल की प्रत्येक चेष्टा से भली भाँति परिचित थी। वह उसे पकड़ने का उपयुक्त अवसर खोजने लगी।

जमुना के हाथ से अपने को बंधन-मुक्त करके बैल हरी-हरी दूब चरने लगा। जिस बैल की रस्सी जमुना के हाथ में थी, वह बहुत सीधा था। जमुना ने उसे छोड़ दिया। वह चक्कर काटकर धीरे-धीरे अपने बिगड़े हुए बैल की ओर आगे बढ़ी। बैल मज़े में दूब चरता रहा। जमुना उत्साहित होकर और भी अधिक सतर्कता से धीरे-धीरे चलने लगी। वह रस्सी के निकट पहुँच गई। चुपचाप झुकी। परंतु उसने रस्सी से हाथ लगाया ही था कि बैल ने हुंकार करके दौड़ लगा दी। जमुना वैसी ही खड़ी

रह गई। दूसरे क्षण उसके मुँह से निकला—"...ए...
ए...ए... ।" उसका श्वास रुद्ध हो गया । फिर वह
वायु-वेग से दौड़ पड़ी ।

नदी-तट पर से जल-पूर्ण कलसी लेकर आती
हुई एक वृद्धा क्रोधांध बैल की झपेट में आकर
पछाड़ खा नीचे गिर पड़ी थी। जमुना ने निकट पहुँचकर
देखा कि वह धीरज की मा तारा है। उसके चेहरे
का रंग उड़ गया। तारा गिरते ही अचेत हो गई
थी। उसका मस्तक फट गया था, और उससे रक्त
की धारा बह रही थी।

जमुना ने कलसी उठाकर देखी। उसमें अब भी
थोड़ा पानी शेष था। उसने अपनी धोती का अंचल
भिगोकर वृद्धा का मुँह धोया। परंतु उसे चेत नहीं
आया। जमुना शंकित और उद्विग्न हो उठी। उसने
अपनी सहायता के लिये किसी को बुलाना चाहा।
परंतु कोई नज़र नहीं आया। तब उसने गाँव में
जाकर धीरज को बुला लाने की बात सोची; परंतु
तब तक इस वृद्धा का क्या होगा ?

था। उसके माथे से रह-रहकर रुधिर का फौवारा-सा निकल रहा था। उसकी अवस्था देखकर जमुना का कोमल हृदय दुःख और अनुशोचना से धड़क कर उठा। वह कहाँ जाय? क्या करे? किसे पुकारे? नदी-तट पर कोई नहीं था। केवल थोड़े-से जल-पत्ती संध्या की निबिड़ निस्तब्धता भंग कर रहे थे।

जमुना अपने बैल भूल गई। उसने अंचल का छोर फाड़कर वृद्धा का ललाट बाँधा। फिर वह उसे उठाने के लिये तैयार हुई। उसने कछौटा मारा। उसकी भुजाओं में न जाने कहाँ से पुरुषों की-जैसी शक्ति आ गई। वह वृद्धा को गोद में उठाकर उसके घर की ओर चल पड़ी।

बस्ती में अँधेरा हो चला था। धीरज का घर इसी छोर पर था। जमुना ने देखा, घर की कुंडी चढ़ी है। तारा की संज्ञा-हीन देह को नीचे रखकर उसने कुंडी खोली। वह भीतर पहुँची। घर के एक कोने में अँगीठी के भीतर उपले सुलग रहे थे। उसने उन्हें फूँककर घर का दीपक जलाया।

फिर बाहर जाकर तारा को उठा लाई। उसे चारपाई पर लिटाकर वह स्वयं उसके सिरहाने बैठ गई। उसने बुलाया—"मा !"

तारा ने धीरे-धीरे आँखें खोलीं। उसने कराह-कर एक करवट लेनी चाही। जमुना ने उसे सँभाल-कर दुखी स्वर में कहा—"लेटी रहो मा !" तारा ने फिर आँखें मूँद लीं। उसके ललाट से रुधिर निकलना अब भी बंद नहीं हुआ था। जमुना ने अंचल फाड़कर जो पट्टी बाँधी थी, वह रुधिर से रँग गई थी। जमुना बैठी-बैठी सोचने लगी—"धीरज कहाँ गया ?"

एक से दो और दो से तीन घंटे बीत गए। जमुना को धीरज के आने की आहट नहीं सुनाई पड़ी। मोठे तेल के दीपक के क्षीण प्रकाश से आलोकित उस निस्तब्ध घर में बैठे-बैठे उसका जी ऊब उठा। एक बार उसने सोचा कि मुहल्ले के किसी व्यक्ति को बुलावे। फिर सोचा कि घर जाकर पिता या भाई को समाचार दे। परंतु तारा की संज्ञा-हीन देह के निकट से

उसे उठने की हिम्मत नहीं हुई। वह बैठी-बैठी सोचने लगी।

सहसा घोड़े की हिनहिनाहट ने घर की निस्तब्धता भंग की। जमुना ने धीरे से कहा—"धीरज !" परंतु किसी ने घर के भीतर प्रवेश नहीं किया। वह द्वार की ओर देखने लगी। उसे ऐसा जान पड़ा, मानो बाहर कोई किसी से बातें कर रहा है। वह उठकर द्वार पर पहुँची। कोई बाड़े के निकट खड़ा हुआ कह रहा था—"हंस, जान पड़ता है, तुम यहाँ खूब सुखी हो।" जमुना ठिठक गई। वह सुनने लगी—"परंतु यह कहाँ गया ? कदाचित् भीतर हो—"

जमुना ने आगे बढ़कर कहा—"कौन है ?" एक व्यक्ति अंधकार में आगे बढ़ा और बोला—"मैं हूँ।"

"तुम कौन !"

"धनंजय। और तुम—"

"मैं जमुना हूँ। तुम यहाँ क्या करने आए ?"

एक बार आपने अश्व को देखने और—"

जमुना ने बीच ही में कहा—"धीरे बात करो।"

"क्यों? क्या अब उसका स्थान तुमने ग्रहण किया है।"

जमुना और भी धीरे बोली—"धीरज घर में नहीं है। उसकी मा मृत्यु-शय्या पर पड़ी है।"

"मृत्यु-शय्या पर!" जमुना अंधकार में देख नहीं सकी, अन्यथा वह देखती कि धनंजय के चेहरे का भाव कैसा हो गया है।

उसने कहा—"हाँ।"

धनंजय बोला—"क्या मैं भीतर चलकर उन्हें देख सकता हूँ?"

"क्यों नहीं।" जमुना को इस समय एक साथी की बड़ी आवश्यकता थी।

वह धनंजय को लेकर भीतर आई। उसने दीपक के प्रकाश में देखा कि उसकी पीठ पर कंबल बँधा है, कंधे पर झोला टँगा है, और पैर धूल से ढँक रहे हैं। वह समझ गई कि धनंजय यात्रा करके आ रहा है। उसने धीरे से कहा—"बैठ जाइए।" पास ही एक चारपाई और पड़ी थी।

धनंजय खड़ा रहा। वह तारा को देख रहा था। उसने कहा—"इन्हें क्या हो गया है ?"

जमुना ने धीरे से बता दिया कि गिरने से माथा फट गया है।

धनंजय ने तारा की देह स्पर्श की, फिर उसकी नाड़ी देखी। वह अपने चेहरे की उद्विग्नता छिपाकर बोला—"कोई चिंता नहीं। रुधिर का रिसना अभी बंद हुआ जाता है।"

उसने कंबल नीचे रख दिया और झोला खोलकर एक डिबिया निकाली। उसने कहा—"मेरे पास एक लेप है। यह घाव पर संजीवनी का काम करता है।"

उसने तारा की पट्टी खोली, क्षत-स्थान का रुधिर पोंछा और लेप लगाकर पुनः दूसरी पट्टी बाँध दी। फिर उसने पूछा—"और कहीं तो चोट नहीं लगी ?"

जमुना इस संबंध में कुछ नहीं कह सकी। तब धनंजय ने दीपक लेकर तारा के हाथ-पैर देखे। एक

जगह टेहुनी में रुधिर था। एक घुटना भी कुछ क्षत-विक्षत हो गया था। धनंजय दोनो स्थानों की मलहम-पट्टी करके चारपाई पर बैठ गया। जमुना अब कुछ स्वस्थ हुई।

उसने कहा—"आपने बड़ा कष्ट उठाया। जान पड़ता है, आप लंबी यात्रा करके आ रहे हैं। जल लाऊँ? मैं आपसे पूछना भी भूल गई।"

"नहीं। इस समय ऐसी प्यास नहीं लगी।"

"भूख तो लगी होगी। देखूँ, यदि घर में कुछ हो।" जमुना जाने लगी। धनंजय ने रोककर कहा—"मुझे भूख भी नहीं है। तुम निश्चिंत होकर बैठो। देखता हूँ, गृह-स्वामी की अनुपस्थिति में अतिथि-सत्कार का सारा भार तुम्हारे ऊपर आ पड़ा है।"

जमुना ठिठकी। फिर धनंजय का भ्रम दूर करने के लिये बोली—"आप भूलते हैं। परिस्थिति ऐसी है कि मैं यहाँ से जा नहीं सकती। यह मेरा घर नहीं है, और न यहाँ मेरा कोई अधिकार है। तो भी इस घर में यदि जल-पान की कोई वस्तु मिल जाय,

तो उसे आपके सम्मुख उपस्थित करना मैं अपना कर्तव्य समझती हूँ।" कहकर वह घर के भीतर चली गई।

धनंजय ने सुख की एक दीर्घ निःश्वास लेकर जमुना को जाते हुए देखा। वह उसे रोक नहीं सका। वह इस घर में एक बूँद जल ग्रहण नहीं करना चाहता था। परंतु वह उस बालिका का अनुरोध न टाल सका।

जमुना एक रकाबी में कुछ मठरी और दो बासी पूड़ियाँ रख लाई। रसोई-घर के भीतर बहुत खोजने पर उसे इतनी ही सामग्री मिली थी।

धनंजय ने हाथ-पैर धोकर मठरी और पूड़ियाँ खाईं और एक लोटा जल पिया।

जमुना ने पूछा—"आप कहाँ से आ रहे हैं?"

"इस समय महोबा से आ रहा हूँ।"

"मामा के यहाँ नहीं गए?"

"वहीं तो जा ही रहा था।"

जमुना चुप हो गई।

धनंजय कहता गया—"परसों ग्वालियर से चला था। बहुत थका हूँ। पर हम लोगों की क्या। सदैव घोड़े पर ही कसे रहते हैं। न हो, तुम सोओ। मैं इनके निकट बैठा हूँ।"

जमुना ने कहा—"नहीं-नहीं। आप जाइए। थके हुए हैं। सोइए।"

परंतु धनंजय न उठ सका।

तारा इस समय सुख से लेटी जान पड़ती थी। संभव है, दुर्बलता के कारण उसे हलकी नींद आ गई हो। उसके माथे पर जो पट्टी बँधी थी, उसमें रक्त की झलक नहीं थी। जमुना समझ गई कि रुधिर का रिसना बंद हो गया है।

धनंजय कुछ कहने के लिये विकल जान पड़ता था।

इसी समय तारा ने नेत्र खोलकर सामने देखा और कहा—"धीरज!"

जमुना ने कहा—"क्या है मा? धीरज नहीं हैं। मैं हूँ।"

"तुम हो, बेटी जमुना।" तारा ने पीड़ा से कराहते हुए कहा—"मैं कहाँ हूँ, तुम्हारे घर में ?"

"नहीं मा। यह तुम्हारा ही घर है।"

तारा ने पुनः बग़ल में देखकर कहा—"यह कौन, धीरज ?"

"नहीं। यह एक परदेशी हैं।"

"धीरज नहीं आया ?"

"अभी तो नहीं आया। वह कहाँ गया है, मा ?"

"मामा के यहाँ गया है। आज आ जाने के लिये कह गया था।"

जमुना ने कहा—"अब तुम सो जाओ मा। बहुत बात मत करो।"

"बड़ा दर्द है बेटी। तुम यहाँ कब से बैठी हो। वह किसका बैल था ?"

जमुना ने दुःख और लज्जा से कातर होकर कहा—"वह मेरा ही बैल था मा। छूट गया था।"

"तुम्हारा था ! चलो, कुछ ऐसी चोट नहीं लगी, बेटी। मैं यहाँ कैसे आई ?"

"मैं उठा लाई थी। अब तुम अधिक बात मत करो मा।"

"कुछ नहीं। चोट तो बहुत लगी होगी। पर तुम्हारे उपचार से तो अब कुछ मालूम ही नहीं होता।"

जमुना ने कहना प्रारंभ किया—"नहीं—"

वृद्धा अनसुनी करके कहती गई—"मेरी एक कामना है। जिस प्रकार इस समय तुम्हारे स्पर्श से अच्छी हो गई हूँ। उसी प्रकार मरते समय भी तुम मेरे निकट रहो, तो सुख से मर सकूँगी।" और उसने स्नेह-पूर्वक जमुना के मस्तक पर हाथ फेरा।

जमुना बोली—"तुम सो जाओ, मा। अधिक बातचीत करने से कष्ट होगा।"

तारा ने आँखें मूँद लीं। वह सो गई। घर में फिर निस्तब्धता छा गई। धनंजय छत की ओर देख रहा था। सहसा बोल उठा—"जमुना!"

"क्या कहते हो?"

"तुमसे एक बात पूछता हूँ।"

"पूछो।"

"मैं ग्वालियर से जो समाचार लेकर आया हूँ, वह इतना महत्त्व-पूर्ण है कि मुझे रात ही में कालिंजर पहुँच जाना चाहिए था।"

"आप रुक गए, इससे आपको कुछ हानि तो न होगी?"

"नहीं। मुझे वैसे भी रुकना था। तुम्हारे भाई को एक जवाब देना था।"

"क्या?" जमुना ने पूछा।

"तुम्हें ज्ञात है, तुम्हारे भाई मेरे साथ तुम्हारा विवाह करना चाहते हैं।"

"मुझे ज्ञात है।"

"इस संबंध में मैं तुम्हारी सम्मति जानना चाहता हूँ।"

"भाई के निश्चय के समक्ष इस संबंध में मेरी सम्मति नगण्य है।"

धनंजय ने साहस करके पूछा—"तो क्या यह कार्य तुम्हारी इच्छा के प्रतिकूल होगा?"

"और क्या अनुकूल होगा?" वह उठकर

खड़ी हो गई और बोली—"बड़ी गर्मी है ।" वह आँगन में चली गई ।

धनंजय ने एक दीर्घ निःश्वास ली । उसने कहा—"जमुना, मुझे आत्म-निवेदन का पुरस्कार मिले या नहीं । मैं तुम्हें प्यार करता हूँ ।"

जमुना के कानों में जैसे किसी ने गरम सीसा ढाल दिया हो । ऐसी बात उसने आज तक किसी के मुँह से नहीं सुनी थी ।

उषाकाल की शीतल वायु के संस्पर्श में भी उसने पसीने से भीगते हुए कहा—"तुम मेरा अपमान—"

धनंजय बीच ही में बोला—"बस-बस, घर में मुमूर्षु रोगी लेटा है । मैं नहीं समझता कि तुम मेरी बात ऐसी अनसुनी करोगी ।"

उसी समय बाहर अरुणचूड़ बोल उठा । घोड़ा हिनहिना । किसी ने बुलाया—

"मा !"

१४

जमुना ने जल्दी से जाकर किवाड़ खोले। उषा की अरुणिमा से घर भर गया। सामने धीरज खड़ा था। वह जमुना को देखकर चौंक गया। उसे अपने नेत्रों पर विश्वास नहीं हुआ। उसने कहा—

"जमुना !"

जमुना ने उत्तर दिया—"हाँ, मैं हूँ। तुम अभी आए !"

धीरज शंकित होकर बोला—"क्यों ? तुम इस समय, इस घर में कैसे !"

"भीतर चलो । सब सुनाती हूँ । तुम्हारी मा को चोट लगी है ।"

धीरज शीघ्रता से भीतर पहुँचा । सामने धनंजय को बैठा देखकर वह फिर ठिठक गया । उसने कहा—"तुम, धनंजय !"

धनंजय उठकर खड़ा हो गया और बोला—"हाँ, मैं हूँ । क्षमा करो । परिस्थिति ने मुझे तुम्हारा अतिथि बनने के लिये बाध्य किया—"

धीरज जल्दी से बोला—"बैठो, तुम-जैसे शत्रु का आतिथ्य बड़े सौभाग्य से मिलता है ।" वह अपनी मा के संबंध में जानने के लिये व्यग्र था । तारा के सिर ाने पहुँचा और चौंककर बोला—"जमुना, यह क्या ?"

जमुना ने सारा हाल सुनाया । अंत में उसने कातर होकर कहा—"मुझे इस दुर्घटना का बड़ा दुःख है । मेरे बैल के कारण यह सब हुआ है ।" जमुना

का स्वर काँप रहा था। वह रोई पड़ती थी। धनंजय ने यह सब स्पष्ट देखा।

धीरज बोला—"दुःख किस बात का जमुना? मेरे लिये तो यह दुर्घटना मंगल-प्रभात लाई है। तुमने आज मेरा घर आलोकित किया है।"

निस्संदेह वह धनंजय की उपस्थिति भूल गया था।

जमुना मानो अपने को संयत करके बोली—"मैंने कुछ नहीं किया। यदि धनंजय न आए होते, तो मा को इस समय न-जाने क्या अवस्था होती।"

धीरज ने एक बार तरल नेत्रों से धनंजय को देखा, फिर उसने बुलाया—

"मा!"

तारा नेत्र खोलकर बोली—"बेटा, तुम आ गए!"

"हाँ, अब कैसा जी है?"

"अच्छा है। जमुना ने मेरे प्राण बचा लिए। संध्या से यहीं बैठी हुई है।"

जमुना बोली—"मुझमें ऐसी शक्ति कहाँ?"

तारा ने दुःखी होकर कहा—"मैं जानती हूँ। मेरी

तो बड़ी इच्छा है कि कल ही धीरज के साथ तेरी भाँवर पड़ जाय।"

जमुना लज्जा से लाल हो गई। उसने धीरज की ओर मुड़कर जल्दी से कहा—"अब मैं जाऊँगी।"

धीरज मृदुल स्वर में बोला—"सबेरा होना चाहता है। रात-भर जागी हो—"

जमुना चली गई। धीरज द्वार की ओर देखता रहा, मानो उसने कोई अनोखा स्वप्न देखा हो।

उस समय आँगन में प्रकाश की किरणें फैल चली थीं। धनंजय अपना कंबल लपेटने लगा। धीरज ने कहा—"धनंजय, तुमने एक बार मेरे और अब मेरी मा के प्राण बचाकर मुझे अपना फिर ऋणी बना लिया है।"

धनंजय बोला—"यह कुछ नहीं। ऐसी अवस्था में प्रत्येक मनुष्य यही करता। इस समय तुम मेरे सैनिक बंधु हो। घर में शत्रु का आक्रमण हुआ है—"

"कैसा शत्रु !" धीरज ने बीच ही में पूछा।

"म्लेच्छ महमूद कालिंजर पर चढ़कर आ रहा है। दो ही तीन दिन में यहाँ रणचंडी का भीषण नृत्य होने को है। मुझे शीघ्र ही कालिंजर पहुँचना है।"

वह कंबल उठाकर तेजी से बाहर निकल आया। धीरज उसके पीछे गया। अपने स्वामी को देखकर हंस हिनहिनाया। धनंजय ठहर गया। उसने पीछे देखकर कहा—

"धीरज, तुमने मेरा अश्व ही नहीं लिया है, किंतु—"

धीरज बड़ी देर तक खड़ा-खड़ा इस किंतु का अर्थ लगाने की चेष्टा करता रहा।

१५

जमुना ने धीरज के घर से बाहर निकलकर सबसे पहले यही सोचा कि वह भाई से क्या कहेगी। वह रात-भर घर नहीं गई। यह सुनकर कि वह धीरज के यहाँ रही है, भाई और पिता अवश्य ही बहुत असंतुष्ट होंगे। भाई तो आग हो जायगा। उसने निश्चय कर लिया कि वह सत्य कहेगी।

वह जिस समय घर पहुँची, उसका भाई पिता से

बात कर रहा था। पिता-पुत्र, दोनों ही चिंतित थे। एक बैल अपने आप घर पहुँच गया था। परंतु जब जमुना दूसरा बैल लेकर घर नहीं पहुँची, तब कुंजन ने समझ लिया कि बैल छूट गया है। उसने आठ बजे तक जमुना की प्रतीक्षा की। न तो जमुना आई और न बैल आया। तब वह चिंतित हुआ। वह कर्णवती के किनारे देखने गया। उसके बाद नदी के उस पार घने वन में ग्यारह बजे तक 'जमुना ! जमुना !' की टेर लगाता रहा। फिर उसने बस्ती में आकर अपने पड़ोस के कई घरों में जमुना की तलाश किया। जमुना नहीं मिली। वह निराश होकर घर आया। उसके पश्चात् पुनः खोजने गया। एक बार लखनजू भी कर्णवती के किनारे का चक्कर लगा आया। रात-भर पिता-पुत्र के मन में तरह-तरह की दुश्चिंताएँ उठती रहीं। सबेरे कुंजन पिता से कहने लगा—

"कहाँ खोजें ? वह ऐसी लड़की नहीं, जो सहज में विपत्ति में पड़ जाय।"

जमुना ठिठक गई। फिर सामने आई। पुत्री को

देखते ही लखनजू का वदन प्रफुल्लित हो गया। कुंजन स्नेह-मिश्रित रोष प्रकट करके बोला—"जमुना! तुम रात-भर कहाँ रहीं? हम खोज खोजकर हैरान हो गए। क्या बैल नहीं मिला? हमें समाचार तो देतीं?"

जमुना क्षण भर तक चुप रही। वह सोचने लगी कि अपनी बात कहाँ से प्रारंभ करे।

लखनजू ने कहा—"चुप क्यों हो गई बेटी। बैल नहीं मिला, न मिलने दो। घर में इतनी जोड़ी तो बँधी हैं।

अंत में जमुना अपने हृदय का समस्त साहस एकत्र करके बोली—"पिताजी, मैं रात-भर धीरज के यहाँ रही—"

पिता और पुत्र, दोनो पर ही जैसे वज्राघात हुआ हो। लखनजू विस्मय से अवाक् होकर पुत्री की ओर देखता रहा और कुंजन क्रोध से नेत्र विस्फारित करके बोला—"धीरज के यहाँ?"

जमुना बोली—"हाँ, उसकी मा को चोट लग गई थी। बैल ने—"

धीरज बीच ही में दाँत पीसकर बोला—"कलं-किनी!"

जमुना चुप हो गई। लखनजू ने अपने स्वर को यथासंभव स्निग्ध बनाकर कहा—"हाँ बेटी, क्या हुआ? बैल ने—"

"बैल ने मार दिया था।" जमुना इतना कहकर चुप हो गई।

कुंजन क्रोध के आवेश में आँधी की भाँति प्रकं-पित हो रहा था। अंत में उसने शांत होकर कहा—"दाऊ, ऐसी बहन न होती, तो अच्छा था।"

जमुना के चेहरे का रंग उड़ गया। वह कटे हुए ठूँठ की भाँति वहीं चबूतरे पर बैठ गई। भाई यदि अपनी कटारी उसके कलेजे में भोंक देता, तो उसे सुख होता। उसने पिता की ओर देखा। लखनजू के चेहरे से ऐसा जान पड़ता था, मानो उसे कोई बड़ी पीड़ा हो रही हो। उसी समय किसी ने पुकारा—

"कुंजनसिंहजी हैं?"

जमुना धीरे से उठकर आँगन में चली गई। कुंजन ने द्वार की ओर देखा। घोड़े पर सवार धनंजय को देखकर उसके अधरों पर स्वागत की हँसी नहीं फूटी। उसने मुसकिराने की व्यर्थ चेष्टा करते हुए कहा—"आइए, आइए। क्या घोड़े से नहीं उतरेंगे ?" और वह बाहर आ गया।

धनंजय बोला—"क्षमा कीजिए। इस समय मैं बहुत जल्दी में हूँ। मुझे अभी कालिंजर पहुँचना है। यह देखिए, मामा से घोड़ा माँगा है।"

कुंजन बोला—"यह तो आप अन्याय कर रहे हैं। घोड़े से नीचे तो उतरिए।"

"नहीं। मैं घोड़े पर चढ़े-चढ़े ही आपसे एक बात करूँगा।"

"कहिए। आप तो वास्तव में बड़ी जल्दी में हैं। मैं दो बार कालिंजर गया। परंतु आपके दर्शन नहीं हुए। जान पड़ता है, मालवा में बहुत दिन लग गए।"

"हाँ। मैं मालवा से ग्वालियर चला गया था।

अभी लौट रहा हूँ। मुझे और कुछ काम नहीं था। केवल आपके प्रस्ताव का उत्तर देना था।"

कुंजन ने धनंजय के घोड़े के और भी निकट उपस्थित होकर कहा—"हाँ, मैं आपसे वही सुनना चाहता था।"

"मैंने विवाह न करने का निश्चय किया है।"

धनंजय ने जैसे कोई बड़ा अशुभ और अप्रत्याशित समाचार सुना हो। उसने कहा—

"सो क्यों ? आपने एक प्रकार से वचन दे दिया था। हम लोग भी निश्चिंत थे।"

"मैं आपको अपने से अधिक उपयुक्त पात्र बतलाता हूँ।"

"मेरी दृष्टि में आपकी ही उपयुक्तता का मूल्य सबसे अधिक है।"

"आप भूलते हैं। खोजने से आपको यहीं मुझसे अच्छा पात्र मिल जाता।"

"उसका नाम सुनूँ" कुंजन ने धनंजय को देखकर कहा।

"धीरज—"

"आप क्या कहते हैं ! उस नीच—"

"आपकी बहन उसे प्यार करती है। वह भी आपकी बहन को प्यार करता है। इन दोनों का संबंध न करके आप अन्याय करेंगे।"

"यह बात यदि और किसी ने कही होती, तो उसकी जीभ काट लेता !" कुंजन ने क्रोधावेश को संयत करके कहा।

"आप ठीक कहते हैं। अपनी बहन के संबंध में प्रत्येक भाई अंधकार में हो सकता है। अच्छा, प्रणाम।" उसने घोड़े को एड़ लगाई। फिर पीछे देखकर बोला—"एक बात और रह गई। कालिंजर पर म्लेच्छों का आक्रमण हो रहा है। मैं आपको और आपके सब गाँववालों को रण-निमंत्रण दिए जाता हूँ।" कहकर उसने घोड़ा बढ़ा दिया।

कुंजन क्रोध से हतज्ञान होकर अपने स्थान पर ज्यों-का-त्यों खड़ा रहा। "उसकी बहन धीरज को प्यार करती है !" ओह ! कैसा पाप था। कैसी लज्जा

थी ! यदि दो घड़ी पहले किसीने—फिर चाहे वह धनंजय ही क्यों न होता—उससे यह बात कही होती, तो वह अपने और उसके प्राण एक कर डालता। परंतु इस समय जब कि वह स्वयं जमुना के मुँह से सुन चुका था कि वह रात-भर बैल नहीं खोजती रही, वरन् धीरज के घर रही है, वह किसी से कुछ नहीं कह सका। परंतु धीरज ने—उस कुत्ते ने—उस कुर्मी के छोकड़े ने—उसकी बहन पर दृष्टि डाली है। उसे अपने घर पर रोक रक्खा ! यह एकदम असह्य था। वह इसे सुन नहीं सकता था। देख नहीं सकता था। वह अपने स्थान पर क्रोध से काँप उठा।

उसने एक निश्चय कर लिया। वह आग और फूस में से या तो आग को शांत करेगा या फूस को उखाड़ फेंकेगा।

१६

धनंजय सुखी था। अथवा कम-से-कम वह अपने को सुखी अनुभव करने का प्रयत्न कर रहा था। परंतु गाँव से बाहर निकलते ही उसने देखा कि उसका हृदय बैठ रहा है। उसे न-जाने कैसी वेदना हो रही है।

वास्तव में वह जमुना को प्यार करता था। वह पहली बार उसे देखते ही उस पर अनुरक्त हो गया

था। उस समय उसे प्राप्त करने की लालसा उसके मन में जाग्रत् नहीं हुई थी। परंतु जब कुंजन ने स्वयं ही जाकर उसके समक्ष जमुना को ग्रहण करने का प्रस्ताव उपस्थित किया, तब उसका हृदय एक अनिर्वचनीय आनंद के स्पर्श से पुलकित हो उठा। अपने सहज-स्वभाव और जाति-गत स्वाभिमान के कारण उसने अपने आनंद को प्रकट नहीं होने दिया। उसने कुंजन के प्रस्ताव को तुरंत स्वीकार कर लेने में अपनी गौरव-हानि समझी। इसके अतिरिक्त उस समय आर्यावर्त के राजनैतिक आकाश में विपत्ति के काले बादल मँडरा रहे थे। कब क्या हो जाय, इसका कोई निश्चय नहीं था। उसे मालवा जाना था। उसने कुंजन को निश्चित उत्तर नहीं दिया। परंतु उस दिन वह रात-भर यही सोचता रहा कि जमुना को पाकर वह सचमुच सुख से रहेगा।

मालवा से लौटते समय उसे पता चला कि म्लेच्छ महमूद ग्वालियर पर चढ़कर आ रहा

है। वह वहाँ का समाचार लेने के लिये ग्वालियर पहुँचा। तब तक महमूद ग्वालियर के मांडलिक राजा को पराजित करके कालंजर पर आक्रमण करने के उद्देश्य से कालपी की ओर बढ़ गया था। धनंजय उसी दिन कालिंजर के लिये चल दिया। मार्ग में वह हंस को देखे बिना आगे नहीं बढ़ सका। इसके अतिरिक्त वह अपने मार्ग के समस्त जनपदों को महमूद के आक्रमण से सचेत करना चाहता था। देवलपुर में अपने मामा से मिलना चाहता था और कुंजन से यह कहना चाहता था कि वह उसकी बहन से विवाह करने को तैयार है, परंतु महमूद के आकर लौट जाने के बाद।

यह घटना-परिस्थिति उसके प्रतिकूल रही। वह धीरज के रुधिर से अपनी प्रतिहिंसा की आग बुझाने नहीं आया था। उसने सोच लिया था कि इस समय उससे बदला लेने का न तो उपयुक्त अवसर ही है और न यथेष्ट समय। वह हंस से दो एक बातें करके अपने मामा के यहाँ और फिर वहाँ से

सबका अवश्य कुछ अर्थ था। जो कुछ समझने को शेष रहा था, वह धीरज की मा ने प्रकट कर दिया था।

आश्चर्य की बात है कि इन दो प्रेमियों पर उसे तनिक भी विद्वेष नहीं हुआ और उनके सुख पर तनिक भी ईर्ष्या नहीं हुई। उसे कालिंजर का युद्ध-क्षेत्र याद आया। उस समय न-जाने क्या हो, इसी संतोष से उसने अपने उद्वेलित हृदय को शांत किया। वह धीरज के घर से निकलकर कर्णावती के तट पर गया। वहाँ उसने नित्य-कर्म से निवृत्त होकर स्नान द्वारा विगत दिवस की यात्रा और रात्रि-जागरण की श्रांति को दूर किया। फिर उसने मामा के यहाँ जाकर घोड़ा माँगा और उनसे विदा होकर कुंजन से केवल एक बात कहने के लिये उसके द्वार पर जाकर आवाज़ लगाई। उस एक बात को मुँह से निकालते समय उसे तनिक भी प्रयास नहीं करना पड़ा। परंतु अब यदि कोई उस बात को वापस ला सके, तो उसके बदले में वह अपना सर्वस्व देने को तैयार था।

एक बार उसके मन में आया कि उसने वस्तुतः

त्याग किया है। उसने गर्व से अपनी छाती ऊँची करनी चाही, परंतु उसका सर्वांग और भी शिथिल हो गया। इतने में उसका अश्व हिनहिनाया। धनंजय ने सामने दृष्टि फेंकी। राजपथ पर एक वृक्ष के नीचे धीरज उसका हंस लिए खड़ा था। निकट पहुँचने पर धीरज ने कहा—"मैं तभी से तुम्हारी प्रतीक्षा में खड़ा हूँ।"

"किस लिये?"

"यह घोड़ा ले जाओ।"

धनंजय अवाक् होकर धीरज की ओर देखने लगा।

धीरज ने कहा—"युद्ध-भर के लिये इसे उधार ले जाओ। फिर लौटा देना। युद्ध में तुम्हें इसकी आवश्यकता पड़ सकती है।"

"जाओ, जाओ।" धनंजय ने जल्दी से कहा।

"मैं इस प्रकार इस घोड़े को नहीं लूँगा।"

और इसके पहले कि धीरज कुछ कहे, वह क्षिप्र-गति से घोड़े को दौड़ाता हुआ दूर निकल गया।

१७

प्रभात हो रहा था। दक्षिण दिशा मेघाच्छन्न थी। क्षितिज पर धुआँ छाया था। वहाँ कदाचित् वर्षा हो रही थी। पर पूर्व बाल-सूर्य की स्वर्ण-किरणों से समुज्ज्वल था। बस्ती में अब भी कहीं-कहीं किवाड़ बंद थे। ऐसे समय लोगों ने भय और विस्मय से स्तंभित होकर ढोल के गुरु-गंभीर नाद के साथ-साथ उच्च कंठ से उच्चारित होती हुई एक घोषणा सुनी—

"हे ! हे ग्रामवासियो ! सावधान होकर सुनो। देश पर उत्तर-प्रदेश के एक यवन-राजा का आक्रमण हुआ है। उसने बाँदा के निकट कर्णवती पार कर ली है। अतएव परम प्रतापी, परम भट्टारक, परम महेश्वर, कालिंजरपुरवराधीश्वर महाराज गंड की आज्ञा है कि तुम सब ग्राम छोड़कर अन्यत्र चले जाओ। और जो वीर हों, सैनिक हों, वृत्ति-भोगी भूम्याधिकारी हों तथा जिन्हें शत्रु से लोहा लेना हो, वे आज संध्या को ही कालिंजर पहुँच जायँ।"

घोषणा के शब्द ग्राम के कोने-कोने में प्रति-ध्वनित हो गए। जो सो रहे थे, वे हड़बड़ाकर उठ बैठे, और जो नित्य-कर्म से निवृत्त होकर कुछ काम करने का विचार कर रहे थे, वे अपना काम भूल गए। ग्राम में सर्वत्र हलचल मच गई। कुछ दिन चढ़ने पर हरिदास अपने पड़ोसी धीरज के यहाँ गया और चेहरे पर महान् आश्चर्य का भाव प्रकट करके बोला—

"यह सब क्या था ?"

"तुमने सुना नहीं ?" धीरज ने उत्तर दिया। वह उस समय स्नान के लिये तैयार खड़ा था। हरिदास बोला—"सुनो तो है। देश पर यवन राजा का आक्रमण हुआ है।"

"तो बस।"

"कब चल रहे हो ?"

"संध्या को।"

"तुमने तो इस प्रकार कह दिया, जैसे तैयार बैठे हो।"

"हाँ।"

"मैं यही जानने आया था।" कहकर वह जाने लगा। धीरज ने उसे रोककर कहा—"चलो, कर्णवती में स्नान कर आवें। कौन जानता है, फिर स्नान करने को मिले या नहीं।"

"बाप रे ! ऐसी सर्दी में।" कहकर हरिदास चला गया। उस दिन वास्तव में बड़ी सर्दी थी। कहीं पानी बरसा था।

धीरज धोती और अँगौछा लेकर घर से बाहर निकला। मार्ग में उसे जमुना दिखाई दी। वह स्नान करके लौट रही थी। धीरज ने देखा कि उसका चेहरा मुरझाई हुई जुही की तरह म्लान है। वह कुछ पूछना चाहता था। परंतु जमुना ने स्वयं ही निकट आकर कहा—"धीरज, यह कैसी विपत्ति है ?" सहसा उसके विषण्ण मुख-मंडल पर संकोच की आभा दौड़ गई। नदी-पथ के इस निर्जन स्थान में धीरज से बातें करने में उसे न-जाने क्यों लज्जा बोध हुई।

धीरज बोला—"विपत्ति का सामना तो करना ही होगा।"

"तुम युद्ध पर जाओगे ?"

"इसमें पूछने की कौन-सी बात है।"

"मा अस्वस्थ हैं।"

"परंतु राजा के प्रति भी तो मेरा कुछ कर्तव्य है।"

जमुना के नेत्र उत्फुल्ल हो गए, परंतु दूसरे क्षण उसका बदन और भी शुष्क हो गया।

धीरज ने कहा—"आज तुम इतनी खिन्न क्य हो ?"

"कुछ नहीं ।" फिर उसने रुककर कहा—"तुम्हारे चले जाने के उपरांत मा की परिचर्या कौन करेगा ?"

धीरज ने अकस्मात् जमुना के कंधे पर हाथ रखकर कहा—"तुम तो हो जमुना !" जमुना धीरज के उस कोमल स्निग्ध और आत्मविश्वास-पूर्ण स्वर का आघात पाकर सहसा विचलित हो गई। उसे रोमांच हो आया। वह धीरज के समाने से भागने का प्रयत्न करने लगी। परंतु उसके पैर धरती में जम-से गए थे । उसकी अवस्था बड़ी दयनीय हो गई थी।

धीरज ने उसे नतमस्तक होकर पैर के अँगूठे से धरती कुरेदते देखा। उसने कहा—

"तुम तो चुप हो गईं। तब क्या मैं यह समझूँ कि उस दिन तुमने मा को प्रसन्न करने के लिये ही वह बात कही थी।"

जमुना ने प्रयास करके कहा—"मैं उनकी सेवा करने के लिये रहूँगी।" और वह जाने लगी। पर धीरज उससे बात करना चाहता था। उसने कहा—"मैं तो केवल तुम्हारे मन का भाव जानना चाहता था। मा यहाँ नहीं रहेंगी। मैं अभी सिद्धपुर समाचार भेजता हूँ। मामा कल यहाँ आकर उन्हें लिवा जायँगे।"

जमुना गंभीर हो गई। उसने अपने को अपमानित समझा।

धीरज बोला—"तुम तो अप्रसन्न हो गई। मैंने तुम्हारी परीक्षा नहीं ली थी।" फिर वह कुछ रुक-रुक बोला—"जमुना, तुम मुझे प्यार करती हो?" उसकी इच्छा हुई कि वह जमुना को छाती से लगा ले। सहसा वह सहम गया। उसने अपने सामने कुछ दूर पर कुंजन को नदी के घाट पर से निकलते देखा था। जमुना ने भी उसे देखा। उसका संपूर्ण मुखमंडल पल-भर में स्याही की भाँति काला हो गया। दोनो क्षण-भर तक निश्चल और निर्वाक्

एक-दूसरे को देखते रहे, फिर क्षिप्रता से अपने-अपने मार्ग पर चले गए।

आश्चर्य की बात थी कि धीरज ने आज कुंजन के समक्ष अपने को अपराधी समझा।

१८

संध्या के पूर्व ही आधा देवलपुर ख़ाली हो गया। जो लोग रह गए थे, वे युद्ध पर जाने की तैयारी कर रहे थे। कोई हथियार बाँध रहा था, कोई घोड़ा कस रहा था, कोई माता से भेंट रहा था, कोई पत्नी से बिदा हो रहा था और कोई बहन से तिलक लगवाने के लिये तैयार खड़ा था।

कुंजन हर्षों से लैस हो चुका था। उसकी चढ़ी

हुई भौंहें, दृढ़बद्ध आधा पट्ठु और आकुंचित ललाट किसी पूर्व निश्चय की सूचना दे रहे थे। उसने पिता से कहा—

"दाऊ, आप चलिए। कदाचित् मुझे कुछ विलंब हो जाय।"

वृद्ध लखनजू ने भी आज राजा के प्रति अपना कर्तव्य पालन करने के लिये कमर से तलवार बाँधी थी। वह बोला—

"अच्छी बात है।"

यदि कुंजन चाहता तो लखनजू उसे रात-भर की भी छुट्टी दे सकता था।

उसकी पत्नी आँगन में आरती का थाल सजाए बैठी थी। उसने जमुना से कहा—'लो, भैया को आरती कर आओ। वे जाने को प्रस्तुत खड़े हैं।"

जमुना बोली—"तुम्हारा अधिकार मैं कैसे छीन लूँ।"

भाभी ने कृत्रिम रोष प्रकट करके कहा—"तुम कैसी हो! लो, तिलक कर आओ।" उसने थाल

जमुना के हाथ में दे दिया। जमुना नाहीं नहीं कर सकी। आज भैया को तिलक न करना बड़ी अमंगल की बात होगी।

वह आरती का थाल लेकर बाहर निकली। पीछे उसकी भाभी थी। जमुना भाई के सामने पहुँची। कुंजन ने एक बार बहन को देखा।

"दूर हो!" साथ ही उसने एक झटका दिया। आरती बुझ गई। थाल झनझनाकर नीचे गिर पड़ा। अक्षत और रोली से कुंजन के चरण-तल की भूमि ढक गई। जमुना भय से काँपने लगी। उसकी भाभी अवाक् होकर बोली—"यह क्या किया? यात्रा के समय ऐसा अशुभ—"

कुंजन शीघ्रता से बोला—"सैनिक की यात्रा कभी अशुभ नहीं होती।"

वह क्षिप्र गति से बाहर गया और घोड़े पर सवार हो गया। उसके नेत्रों से आँसुओं की गरम-गरम बूँदें निकलकर वक्षस्थल पर बँधे हुए तवे पर गिरीं।

जमुना क्षण-भर तक अपने स्थान पर ज्यों-की-त्यों

खड़ी रही। लखनजू हत-ज्ञान होकर बैठा था। उसने कुंजन का स्वर सुना—

"दाऊ, आप चलिए। मैं एक काम से छुट्टी पाकर अभी आता हूँ।"

१६

धीरज अपनी मा से कह रहा था—"मा, तुम रोती क्यों हो। क्या तुम्हारा पुत्र युद्ध से पराङ्-मुख हो रहा है, अथवा वह पराजित होकर लौटा है।"

तारा केवल रो रही थी। इतने में बाहर किसी ने बुलाया—

"कोई है ?"

धीरज अपने अश्रुप्रवाह को बलपूर्वक रोकता हुआ बाहर आया और द्वार पर अश्व अड़ाकर खड़े हुए कुंजन को देखकर सँभलकर बोला—

"क्या है ?"

"देखता हूँ, तुम यात्रा के लिये प्रस्तुत हो।"

"हाँ।"

"तो मैं ठीक समय पर आ गया।"

"क्या कहते हो ?"

"मैं भी जा रहा हूँ।"

"फिर ?"

"वहाँ जाने के पूर्व मैं एक ऐसे आदमी की खोज में था जिस पर अपनी तलवार की बाढ़ की परीक्षा कर सकूँ।" और वह तीक्ष्ण दृष्टि से धीरज को घूरने लगा।

धीरज पल-भर में सब समझ गया। उसने अविचलित भाव से कहा—"ठीक कहा। मेरी तल-वार में भी मोरचा लग रहा है। परंतु इस समय मैंने उसे अन्य उद्देश्य से बाँध रक्खा है।"

"चलो, चलो।" कुंजन अपनी विशाल छाती को ऊँचा करके बोला "बहाना रहने दो। मैं इस समय तुम-जैसे तुच्छ जीव के रुधिर से अपने हाथ नहीं रँगना चाहता था, परंतु युद्ध-यात्रा के समय आज जो अमंगल हुआ है उसके दोष-क्षालन के लिये तुम्हारे रक्त की आवश्यकता है।"

"परंतु तुम्हारा रक्त-पात करने में मुझे सचमुच दुःख होगा। और यदि ऐसा हुआ, तो इसमें तुम्हारा ही दोष है।" कहकर धीरज भीतर गया। उसने तारा की चरण-रज माथे से लगाकर कहा—"मा, मैं अभी आया। फिर युद्ध-यात्रा करूँगा।"

तारा ने पूछा—"यह कुंजन किसलिये आया है?"

"फिर बताऊँगा।"

माता के अश्रु-बिंदुओं का तिलक लेकर धीरज बाहर आया और अपने घोड़े पर सवार होकर बोला—

"चलो। किधर?"

कुंजन ने अपना अश्व मोड़कर कहा—

"बाँध पर।"

बाँध राजपथ के उस पार घने वन के भीतर था।

दोनो धीर मंद गति से कर्णावती के किनारे चलने लगे। दोनो ही अपने घोड़ों की भाँति मूक थे।

राजपथ पर पहुँचकर दोनो ने घोड़ों से नीचे उतरकर उन्हें पेड़ से बाँधा और वन में प्रवेश किया। वन के उस पार कर्णावती का विशाल बाँध था। बाँध का स्वच्छ जल उस समय शांत और गंभीर था। चारो ओर शीत-कालीन आगत संध्या की अवसन्नता छाई हुई थी। उसके तट पर पहुँचकर धीरज ने अपनी तलवार निकाल ली।

कुंजन ने अपनी तलवार उसकी ओर फेंक-कर कहा—

"लो माप लो।"

धीरज लापरवाही से बोला—"मैं ऐसी तुच्छ बातों को महत्त्व नहीं देता।"

कुंजन ने भौहें संकुचित करके तलवार उठा ली।

"लो सँभलो।" उसने धीरज पर उछलकर कहा।

"मैं तुम्हारी प्रतीक्षा में हूँ।" धीरज पैंतरा बदलकर बोला।

निस्तब्ध संध्या के धूमल प्रकाश में दोनो की तलवारें बिजली की तरह कौंधने लगीं।

नौजवान धीरज का हृदय अस्थिपंजर को तोड़कर बाहर निकला पड़ता था—भय से नहीं, भय का तो वहाँ नाम नहीं था, वरन उत्तेजना से। वह उन्मत्त चीते की भाँति लड़ रहा था। कुंजन बलिष्ठ और अनुभवी था। तो भी धीरज के आक्रमणों से अपने को बचाने के लिये उसे अपने समस्त कौशल का उपयोग करना पड़ रहा था।

अंत में कुंजन का धैर्य जाता रहा। इस नवयुवक को, जिसे वह तलवार चलाने की कला में अपने सामने छोकड़ा समझता था, इस प्रकार मैदान में डटते देखकर वह खीझ उठा। अब तक वह अपनी तलवार से उसका अंग तक स्पर्श नहीं कर पाया था। धीरज को यद्यपि अभ्यास नहीं था, परंतु उसमें फुर्ती थी। वह अपने प्रतिद्वंद्वी को

नचा रहा था। कुंजन ने इसका अंत करना चाहा। उसने उछलकर अपने प्रतिद्वंद्वी पर एक भीषण आक्रमण किया। धीरज बचा गया, और इससे पहले कि कुंजन सँभले, उसने उसके खड्ग के नीचे निकलकर उसकी जाँघ पर एक हलका-सा खरोंचा बना दिया।

उसने सामने जाकर कहा—"एक!"

कुंजन लज्जित हुआ और इस कारण और भी कुपित हो गया। उस समय यदि धीरज चाहता तो अपनी तलवार उसके पेट में भोंक देता।

कुंजन ने ललकारकर कहा—"यह कुछ नहीं। तू अबकी बार नहीं बच सकता।"

कुंजन ने अपनी सारी शक्ति से उसके मस्तक पर प्रहार करना चाहा। धीरज ने उस प्रहार को बीच ही में अपनी तलवार पर ले लिया। उसकी तलवार झनझनाकर दो टूक हो गई।

कुंजन कुटिल हँसी हँसकर बोला—

"अहम्मन्य! यह ईस्पात की खपाच लेकर आया था!"

धीरज मूँठ फेककर बोला—"मैं मल्लयुद्ध करूँगा।"

परंतु कुंजन अपने प्रतिद्वद्वी को इतना अवकाश नहीं देना चाहता था। परास्त होने की आशंका ने उसे भीषण बना दिया। उसने धीरज पर प्रहार किया। तलवार उसके कंधे से नीचे उतर गई। वह लड़खड़ाकर बैठ गया।

कुंजन उसके निकट जाकर खड़ा हो गया। और बोला—"यह उस कुदृष्टि-पात का फल है।"

धीरज ने कंधे की ओर सिर लटकाए हुए कहा—"यदि यह वार तुम्हारे ऊपर पड़ा होता, तो मुझे बड़ा विषाद होता। परंतु अब मैं हर्ष के साथ जा रहा हूँ।"

"मैं भी सुखी नहीं हूँ। जो कुछ तुमने किया है, उससे दंड अधिक हो गया है।"

"तुमने क्या समझा था, कुंजन?"

"इतनी स्पष्ट बात को और अधिक समझने के लिये किस शक्ति की जरूरत होती है?"

"मेरे मर जाने में किसी की कोई हानि नहीं है।

परंतु मैं यह चाहता हूँ कि तुम यहाँ से इस निश्वास के साथ जाओ कि वह पवित्रता का पुंज है।"

कंधे से रुधिर का फव्वारा फूट निकला। वह धराशायी हो गया।

"रात-भर वह वहाँ क्यों रोकी गई ?"

धीरज ने टूटते हुए स्वर में कहा—"इसका उत्तर मेरी मा को तुम्हारे बैल का पहुँचाया हुआ आघात और जमुना का किया हुआ उपचार दे सकता है; और दे सकता है धनंजय, जो वहाँ रात-भर रहा था। मैं तो सबेरे आया था, जिस समय वह जा रही थी।"

वह कराहने लगा।

कुंजन तलवार की मूँठ पर सिर रखकर रह गया और एक निश्वास छोड़कर बोला—"ओह ! मेरे लिये किस प्रायश्चित्त का विधान है !"

धीरज ने स्खलित स्वर में कहने का प्रयत्न किया—"कुं—ज—न—"

कुंजन ने अपनी तलवार फेंक दी। वह उसके घुटने पर सिर रखकर बोला—

"एक बार कह दो, वही करूँगा।"

धीरज के मुँह से निकला—

"सुखी रहे।"

"मुझे क्या आदेश ?"

"जमु———" अंतिम निश्वास के साथ जिस अक्षर का उच्चारण हुआ, नहीं कहा जा सकता कि वह क्या था।

कुंजन उसके पैरों में लिपट गया।

उसने धीरे-धीरे मस्तक उठाया। चेहरे पर गंभीर विषाद की कालिमा छाई हुई थी। अनुताप और अनुशोचना से विकल होकर वह कहने लगा—"हाय ! मैंने यह कैसा घोर कुकर्म कर डाला ! एक निर्दोष व्यक्ति के रुधिर से अपने हाथ रँगे ! अब तो इसका यही प्रायश्चित्त है कि युद्ध-क्षेत्र में जाकर अपने प्राण त्याग करूँ। मैंने बहन पर संदेह किया। मैं कैसा पातकी हूँ। वह क्या कहती होगी। कितने स्नेह से आरती सजाकर लाई थी ! मैंने उसका तिरस्कार किया। उसका यह अभिशाप है !"

वह माथा थामकर रह गया और सोचने लगा। फिर बोला—

"अब इस शव का क्या करूँ? कहाँ ले जाऊँ? गाँव में ले जाने से इसकी मा का क्या हाल होगा, और जमुना क्या कहेगा?"

वह फिर सोचने लगा। उसने एक निश्चय किया।

"ठीक है। यह तो दिव्यात्मा था। जैसे ऋषि अंतिम समय जल-समाधि लेते हैं, वैसे यह भी लेता। इसे जल-समाधि ही दे दूँ। किसी को विशेष पता भी नहीं लगेगा। लोग यही समझेंगे कि इसने युद्ध-क्षेत्र में प्राण-त्याग किए हैं।"

उसने अपनी तलवार उठा ली। फिर वह शव को लेकर बाँध की ओर अग्रसर हुआ।

३०

कुंजन के जाने के बाद ही लखनजू भी चला गया। जमुना उसे बिदा करके घर के भीतर आई। वह वक्षःस्थल पर हाथ रखकर क्षण-भर तक आँगन में खड़ी रही। निस्पंद और निर्वाक्। मानो अपने टूटते हुए हृदय को सँभालने का प्रयत्न कर रहा हो। उसने एक दीर्घ निश्वास ली। फिर नेत्रों का जल पोंछकर भाभी से बोली—"अब मुझे भी आज्ञा दो।"

भाभी—अश्रु-स्नावित नेत्रों से उसकी ओर देखने लगी, और बोली—"जमुना !"

जमुना ने कहा—"भैया गए, दाऊ गए। तुम्हीं बताओ, मैं किसलिये रहूँ ?"

भाभी ने अपने तीन वर्ष के छोटे बालक को उसकी गोद में रख दिया और रुद्ध कंठ से कहा—"इसके लिये।"

जमुना उसे चूमकर बोली—"भगवान् इसे चिरायु करे।"

भाभी ने शोकाकुल होकर कहा—"मैं जानती हूँ, तुम किसके लिये जा रही हो।"

जमुना क्षण-भर तक उसकी ओर देखती रह गई। फिर गंभीर होकर बोली—"तब फिर मुझे आशीर्वाद दो भाभी। मेरी यह यात्रा सफल हो।"

उसने जल्दी से पुरुष-वेश धारण किया। केश-कलाप पर पगड़ी बाँधी। अँगरखा पहना। ऊपर से तवा बाँधा। कमर से तलवार लटकाई। हाथ में धनुष-बाण लिया। इस वेश में वह ऐसी जान

पड़ी मानो रूपकथा का कोई सुंदर राजकुमार अपनी प्रेमिका से मिलने के लिये किसी अज्ञात और अनोखे देश की यात्रा के लिये प्रस्तुत हो। वह फिर भाभी से गले लगी। भतीजे को छाती से लगाया। और बाहर निकल आई। मुहल्ले में सन्नाटा था। केवल रोहित किसी की प्रतीक्षा में अपने द्वार पर बैठा था। जमुना रुका। फिर तेज़ से चलने लगी। वह राजपथ को ओर जाने के बजाय धीरंज के घर के सामने कैसे पहुँच गई, उसे स्वयं पता नहीं चला। द्वार पर तारा खड़ी थी। बाड़े में हंस को न देखकर जमुना ने पूछा—"मा वह गए?"

तारा ने कहा—"अभी तो वह तुम्हारे भैया के साथ न-जाने कहाँ गया है।"

"भैया के साथ!" जमुना का हृदय न-जाने क्यों धक-से हो गया। वह कर्णवती के किनारे-किनारे चल पड़ी। राजपथ पर दो अश्वों को बँधा देखकर उसने द्रुत-वेग से वन में प्रवेश किया,

और वह ठीक उस समय घटना-स्थल पर पहुँची जब उसका भाई धीरज का शव ले जा रहा था।

कुंजन ने सहसा सुना—

"हाय ! भैया !!—"

वह आपाद-मस्तक काँप गया। उस स्वर को सुन-कर धीरज की मृतक देह स्वयं ही उसके हाथ से बाँध के जल में छूट पड़ी। उसकी पुरुष-वेष-धारिणी बहन जमुना पहले तो जहाँ धीरज के रुधिर से धरती रँगी हुई थी, वहाँ ठहरी, फिर उन्मादिनी की भाँति भाई के सम्मुख उपस्थित होकर बोली—

"हाय ! भैया ! तुमने क्या किया !"

कुंजन पागल की भाँति भर्राई हुई आवाज़ में बोला—"मैंने ऐसा किया है, जिसे नीच-से-नीच पामर भी नहीं कर सकता था, और जिसका कोई प्रायश्चित्त नहीं है।"

"तुमने खूब किया। मैं भी प्राणनाथ के साथ चली।"

"ठहरो ! ठहरो !" परंतु वह कहता ही रह

गया। जमुना धनुष फेककर छपाक से शव के ऊपर जल में कूद पड़ी। कुंजन पल-भर तक हतज्ञान-सा होकर खड़ा रहा। फिर जब उसने देखा कि जल के भीतर से बुदबुदे उठ रहे हैं और उसकी बहन धीरज के शव को छाती से लगाकर पुनः जल के भीतर अंतर्धान हो गई है, तब ऊपर से वह भी कूद पड़ा।

बाँध बहुत गहरा था। पर कुंजन अपने प्राण देकर बहन की रक्षा करना चाहता था। वह डूबा और उतराया। उसने एक प्रयास और किया। अंत में वह जमुना के बाहुपाश में आबद्ध धीरज की मृतक देह को लेकर हाँफता हुआ घाट पर आया। उसने दोनों शव तट पर रक्खे और ऊपर देखा। सामने धनंजय खड़ा था।

वह अपनी माता को देवलपुर मामा के घर पहुँचाने आया था। कालिंजर से देवलपुर अधिक सुरक्षित था, क्योंकि वह महमूद के मार्ग से दूर था। धनंजय अपनी मा के साथ गाड़ी पर बैठा

था। सहसा उसने राजपथ के किनारे अपने हंस को देखा। हंस उस समय हरी-हरी दूब चरने में लगा था। धनंजय उछला और हंस के पास पहुँचा। उसके कंठ-प्रदेश पर हाथ रखकर बोला—"वाह, जिस तरह मुझसे बिछुड़े थे, उसी प्रकार मिल भी गए।" वह उसे लेकर जा ही रहा था कि उसने छपाक-छपाक का शब्द सुना। उसे कौतूहल हुआ। उसने रेंवजा और बबूल की सघनता को भेदकर बाँध की ओर देखने का प्रयत्न किया। दूसरे क्षण वह हंस को वहीं छोड़कर बाँध पर पहुँच गया।

"तुम, धनंजय !" कुंजन ने स्खलित स्वर में कहा। उसका संपूर्ण मुखमंडल चरण-तल के निकट रक्खे हुए शव की भाँति ही निर्जीव और कुरूप हो रहा था।

धनंजय ने क्षण-भर पहले उस भीषण दृश्य को देखकर अपने नेत्र मूँद लिए थे। उसने अपनी नीरव तल्लीनता भंग करके कहा—

"यह क्या है ?"

"देखते नहीं!" कुंजन ने उत्तर दिया।

"तुमने धीरज की हत्या की है!"

"और बहन की भी!"

"एं! कैसे? क्यों?"

"ओह, मेरा माथा घूम रहा है, धनंजय।" और वह मूर्च्छित होकर बहन के शव पर गिर पड़ा।

धनंजय ने एक दीर्घ निश्वास लेकर अपना मस्तक थाम लिया, मानो वह फटा जाता हो। वह धीरे-धीरे बैठ गया।

सूर्यास्त हो चुका था। बाँध के जल में पश्चिम-आकाश की अंतिम लालिमा झिलमिल-झिलमिल कर रही थी। धनंजय उस प्रकाश में एक ज्योति देख रहा था। अंत में उसकी तंद्रा भंग हुई। उसने कुंजन की मूर्च्छित देह को अलग हटाकर धीरज और जमुना के शव पर अपना उत्तरीय डाल दिया। फिर वह कुंजन को अलग ले जाकर उसे सचेत करने की चेष्टा करने लगा।

सहसा एक घरघराहट सुनाई पड़ी। धनंजय ने

सहमकर देखा। नदी में एकाएक बाढ़ आ गई थी। उसने कुंजन की मूर्च्छित देह को दूर हटाया। तब तक बाँध उबला, एक हिलोर उठी, और तट पर रक्खे हुए धीरज और जमुना के शव को अपने विशाल अंक में भरकर पुनः लीन हो गई। धनंजय देखता रह गया। क्षण-भर तक उसके मुँह से शब्द नहीं निकला। उसने इसे दैवी घटना समझा। बाँध के जल-प्लावित तट को देखते हुए उसने कहा—

"ठीक हुआ। दोनों प्रेमियों को एकसाथ जल-समाधि मिली।"

उस समय सर्वत्र संध्या का अंधकार घनीभूत हो चला था। पर धनंजय ने चलते समय भी बाँध के जल पर एक प्रकाश देखा।

उपसंहार

जब युद्ध समाप्त हो गया और महमूद चँदेलों से संधि करके वापस चला गया, तब उस बाँध के तट पर, जिसने लखनजू की कन्या जमुना और उसके प्रेम-पात्र धीरज को जल-समाधि दी थी, किसी ने एक मंदिर बनवा दिया। मंदिर में दो मूर्तियाँ स्थापित थीं। बाहर परिक्रमा के एक कोने में एक शिला-खंड पर अंकित था—

"यह मंदिर लखनजू की कन्या जमुना और उसके प्रेमी धीरज की स्मृति में क्षत्रिय धनंजय ने बनवाया है।"

थोड़े ही दिनों में देवलपुर और उसके आस-पास के ग्रामों में इस मंदिर के संबंध में अनेक आश्चर्य-जनक कथाएँ प्रचलित हो गईं। उसे देखने के लिये दूर-दूर से अनेक यात्री आने लगे। बाँध पर प्रति वर्ष मंदिर के निकट मेला लगने लगा। किसी उपयुक्त नाम के अभाव में लोग 'कन्या का मंदिर' कहकर एक-दूसरे को उसका परिचय देने लगे। धीरे-धीरे कर्णावती के बाँध का नाम भी 'कन्या का बाँध' हो गया। समय ने तथा लोगों की कल्पना-शक्ति और भाव-प्रवणता ने इसमें और भी परिवर्तन किया। बाँध के कारण कर्णावती का नाम भी कन्या और कन्या से केन हो गया।

अब न देवलपुर है, न वह बाँध है, न उसके तट का वह मंदिर है, और न उस मंदिर में स्थित वह शिलाखंड ही है। परंतु केन अब भी वन, प्रांतर

डाला और उसके शव को नदी के बाँध में ज़मीन के नीचे गाड़ दिया। कन्या को जब इसका पता चला, तब उसने शोकाकुल होकर अपनी निर्दोषता प्रकट की, और ईश्वर से प्रार्थना की कि उसे अपने प्रेमी का शव देखने को मिल जाय। ईश्वर ने उसकी प्रार्थना सुन ली, नदी में बाढ़ आई, बाँध फटा, कुरमी के लड़के का शव प्रकट हुआ, साथ ही बालिका ने जल-समाधि ले ली, तब से नदी का नाम कर्णावती से कन्या और कन्या से केन पड़ गया।"

नं० २

सन् १०२१ ई० में महमूद ने क़न्नौज के राजा राज्यपाल पर चढ़ाई की, राज्यपाल उसकी शरण में आ गया, और उसे खिराज देने पर राज़ी हो गया, उसके इस कार्य से क्षुब्ध होकर कालिंजराधिपति महाराज गंड के पुत्र विद्याधर ने क़न्नौज पर आक्रमण किया। इस कार्य में तत्कालीन कलचूरि, परमार, तथा कच्छपघात राजा भी सम्मिलित थे। युद्ध में कालिंजराधिपति के आश्रित दूबकुंड

(ग्वालियर प्रदेश में) के राजा अर्जुनदेव ने अपने बाण से राज्यपाल का शिरच्छेदन किया। इस समाचार को पाकर दिसंबर सन् १०२२ ई० में महमूद ने ग्वालियर और कालिंजर पर चढ़ाई कर दी। मुसलमान इतिहास-लेखकों का कथन है कि महमूद ने गंड को परास्त किया और उससे संधि करके लौट गया।

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३	७	अथव	अथवा
४	१	कर्ण वहुधावती	वहुधा कर्णावती
,,	४	।शवालय	शिवालय
,,	१०	यह कहरहा	वह कह रहा
,,	१८	मुसकिराकर	मुसकराकर
५	८	सैकत भूमि	सैकत-भूमि
,,	१५	यह उन दोनों	वह उन दोनों
७	५	न ठीक ।	न ठीक ?
,,	६	ऐसा करेगा ।	ऐसा करेगा ?
,,	१७	यहाँ से	वहाँ से
८	४	सीढ़ी	ढीं
११	१७	ज्येष्ट	ज्येष्ठ
१२	५	दःख	दुःख
१४	१४	छाटा	छोटा
१६	१५	दो सा	दो सौ
२३	३	कंजब	कुंजन
२६	१६	उठी हैं	उठा है ।
३५	१	घाड़ा	घोड़ा
६१	१४	टी	डीं
६५	१०	महाराज के आश्रित की आज्ञा से	महाराज की आज्ञा से उनके आश्रित

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८२	४	में।	में
,,	६	सभा	सभी
८३	१३	भानजे का	भानजे को
६४	४	धड़क कर उठा	धड़क उठा
६६	११	यह	वह
१०७	१४	सिराने	सिरहाने
१२१	३	कालजर	कालिजर
१२६	८	भूम्याधिकारी	भूम्यधिकारी
१२७	४	सुनो तो है,	सुना तो है
१२६	१	क्य	क्यों
१४०	५	धरज	धीरज
१४६	६	रहा हो	रही हो
१४८	७	तेज़ से	तेज़ी से
१५४	४	जिसने	जहाँ
,,	५	धीरज को	धीरज ने
,,	,,	दी थी	ली थी
१५७	५	कवदंती	किंवदंती
१५८	२	निर्दोपता	निर्दोपिता